राजिन्दर सिंह बेदी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप मे राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की मॉ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत मे लेखन-कला का संभवत. सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य - राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

राजिन्दर सिंह बेदी

लेखक
वारिस अलवी

अनुवादक
सत्यदेव चौधरी

साहित्य अकादेमी

Rajinder Singh Bedi : Hindi translation by Satya Dev Choudhary of Varis Alvi's monograph in Urdu. Sahitya Akademi, New Delhi (1992),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

प्रथम संस्करण : 1992

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, 23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

109, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

ISBN 81-7201-279-9

लेज़र-टाईपसेटिंग

एस. एस. एस. प्रिन्टर्स, नयी दिल्ली 110 002

मुद्रक

सुपर प्रिन्टर्स, दिल्ली 110 051

विषय-सूची

जीवन और व्यक्तित्व

राजिन्दर सिंह् बेदी पहली सितम्बर सन् 1915 को लाहौर में पैदा हुए। एक निबन्ध में अपने जन्म की चर्चा उन्होंने बड़े मनोरंजक रूप में की है। लिखते हैं –

> "रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि संसार में प्रतिदिन जो इतने मनुष्य पैदा हो जाते हैं, इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर भी मनुष्यों की रचना करने से नहीं थका। ईश्वर का यह कितना क्रूर मज़ाक है कि चूँकि वह थक नहीं सकता इसलिए मनुष्य बनाता जाता है :
>
> बेकार म बाश कुछ किया कर,
> पाजामा उधेड़ कर सिया कर।

तो खुदा के पाजामे का आख़री टाँका अर्थात् मैं पहली सितम्बर सन् 1915 की सुबह लाहौर में 3 बजकर 47 मिनिट पर केवल महाकवि रवीन्द्रनाथ को प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए पैदा हो गया।"

बेदी की माँ सेवादेवी हिन्दू तथा ब्राह्मण-वंश से थी, और पिता बाबा हीरासिंह खत्री सिख थे। शब्द 'बेदी' या 'वेदी' वेद से आया है। वे खत्री जो वेद को अपना ग्रन्थ मानते हैं 'बेदी' कहलाते हैं। जैसा कि बेदी ने स्वयं बताया है – उनकी माँ उनके पिता के साथ अपने घर से भागकर आयी थीं, और दोनों ने लाहौर के एक आर्यसमाज मन्दिर में शादी की थी। पिता पोस्ट आफ़िस में नौकर थे। घर का रहन-सहन हिन्दुआना भी था और सिक्खी भी। गीता और जपजी साहब दोनों का पाठ होता। जैसा कि बेदी के भाई हरबंस सिंह वर्णन करते हैं – वे इस्लामी संस्कृति से भी दूर नहीं रहे। पिता महोदय सूफ़ी वचनों में रुचि रखते थे, और गुर-परब और जन्माष्टमी के त्योहार मनाने जाते तो माँ ईद के मेलों में भी बच्चों को ले जाती। किसी धर्म या विश्वास के प्रति अरुचि नहीं थी। इस वातावरण का बेदी पर गहरा प्रभाव पड़ा। हर दुःख-दर्द को तीव्रता से महसूस करना, अपने पात्रों में अपने-आपको समो देना, और हास्य-व्यंग्य की चाशनी – यह सब कुछ उन्हें माता-पिता से उत्तराधिकार में मिला था।

बेदी की माँ उर्दू, हिन्दी और थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी जानती थीं। बेदी के कथनानुसार प्रारम्भिक कहानियाँ जो उन्होंने बचपन में सुनीं, जिन और परी की कहानियाँ नहीं थीं, बल्कि

माहात्म्य थे, जो गीता के हर अध्याय के अन्त में होते हैं, और जो बड़ी श्रद्धा के साथ बेदी दूसरे बच्चों के साथ मिलकर माँ के पास बैठकर सुना करते थे। पाँच वर्ष की आयु में बेदी रामायण और महाभारत की कहानियों और पात्रों से परिचित हो चुके थे। माँ की बीमारी के कारण बेदी के पिता जी एक पैसे रोज़ किराये पर कोई-न-कोई किताब बाज़ार से ले आते थे और पढ़ कर माँ को सुनाया करते। बेदी भी पास बैठे सुना करते। इस तरह स्कूल की उम्र में टॉड के राजस्थान और शेरलॉक होम्स की घटनाओं से परिचित हो चुके थे। माँ की भी साहित्य में रुचि थी। गुरु साहबान के जीवन और उनसे सम्बद्ध साखियों के साथ-साथ रामायण, महाभारत, अलिफ़ लैला, वली बुज़ुर्गों के क़िस्से – सब याद थे। घर में किताबें और रिसाले प्रायः आते। चाचा सम्पूरन सिंह लाहौर में एक प्रेस के मैनेजर थे, जिसमें हर प्रकार के उपन्यास और क़िस्से छपते। घर में किताबों का ढेर लगा रहता। या तो प्रसिद्ध अंग्रेज़ी उपन्यासों के अनुवादों के पन्ने पलटे जाते, या फिर 'खूनी ख़्वाब', 'एक रात में बीस खून' और 'चन्द्रकान्ता' आदि पढ़े जाते। बेदी के चाचा ने जब स्टीम प्रेस ख़रीद लिया तो इसके साथ पाँच-छह हज़ार किताबें भी आयी थीं। किताबी कीड़े की तरह बेदी इन किताबों को चाटते रहे। हरबंस सिंह लिखते हैं कि सरदियों में, रात गए, चूल्हे के चारों ओर बैठे पिताजी किसी-न-किसी किताब या रिसाले से कुछ-न-कुछ पढ़कर सुनाते, और सब घुटनों में सिर दिये सुनते रहते। कहानी के पात्रों के दुःख और खुशी की तीव्र अनुभूति करते, रोते और हँसते।

बेदी कॉलेज में इन्टरमीडियेट तक ही पहुँचे थे कि माँ का क्षयरोग के कारण देहान्त हो गया। माँ की बीमारी के दिनों में इन्होंने उनकी बहुत सेवा की, उनकी टट्टी-पेशाब तक साफ़ करते। इन्हें माँ से बहुत लगाव था। उनके हार्दिक आशीर्वाद इन्हें मिलते रहे। माँ के मरने के चार-पाँच साल बाद ही इनके पिता जी की भी मृत्यु हो गयी। इनके पिता अपने अन्तिम दिनों में टोबा टेकसिंह में नियुक्त थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि वह संसार से जाने वाले हैं। छुट्टी लेकर लाहौर आ गए और अपनी जान अपने होनहार सपूत की बाँहों में दी। उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिए बेदी मिट्टी में लेट-लेट कर दुआएँ माँगते रहे। (हरबंस सिंह)

इन्टरमीडियेट की परीक्षा बेदी ने शायद सन् 1933-34 में उत्तीर्ण की। उन दिनों बेरोज़गारी बहुत थी। आये दिन ग्रेजुएटों की रेलगाड़ी के सामने आत्महत्या करने की ख़बरें छपतीं। पोस्ट आफ़िस में कुछ क्लर्कों के रिक्त स्थान निकले तो पिता के कहने पर बेदी परीक्षा में बैठ गये और सफल हुए। वह आगे शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे, पर पिता की इच्छा से क्लर्की कर ली।

बेदी के साहित्यिक जीवन का आरम्भ भी कॉलेज की ज़िन्दगी अर्थात् सन् 1931 से लगभग सत्रह-अठारह वर्ष की आयु से होता है। उन दिनों उन्होंने अंग्रेज़ी में कविताएँ लिखीं। उर्दू और पंजाबी में कहानियाँ और निबन्ध लिखे। एक पत्रिका 'सारंग' लाहौर

से निकलती थी जो पंजाबी भाषा और फ़ारसी लिपि में छपती थी। पत्रिका की आर्थिक स्थिति ख़राब थी। बेदी ने बग़ैर पारिश्रमिक इसका सम्पादकत्व सँभाला। सँभाला क्या, सारी पत्रिका स्वयं ही लिखनी शुरू कर दी। हर प्रकार के निबन्ध, फ़ारसी ग़ज़लों और रुबाइयों के पंजाबी अनुवाद, कहानियाँ खुद ही लिख-लिख कर विभिन्न नामों से छापते रहे। जब तक यह पत्रिका चली, इन्हें लाभ यह हुआ कि हर प्रकार अगड़म-बगड़म साहित्य पढ़ने की जैसी इनकी आदत थी, वैसे ही अब हर विषय पर लेखनी चलाने का इन्हें अभ्यास हो गया। (हरबंस सिंह)

विद्यार्थी-काल में बेदी 'मुहसिन लाहौरी' के नाम से लिखा करते थे। लिखने में बहुत श्रम करते। क्लर्की के दिनों में देर रात तक पढ़ते और लिखते रहते। पुस्तकालय से किताबें लाते, और दिन भर थके होने पर भी रात को दो-दो बजे तक पढ़ने-लिखने में व्यस्त रहते। पहले अख़बार 'पारस' लाहौर के साप्ताहिक संस्करण में आपकी कहानियाँ छपतीं, जो रूमानी शैली में लिखी गयीं थीं। बाद में 'अदबी दुनियाँ' लाहौर में कहानियाँ छपने लगीं। इनकी बहुत इच्छा थी कि 'हुमायूँ' लाहौर में इनकी कोई कहानी छपे, मगर सम्पादक को बेदी साहब से शायद कोई रंजिश थी। जब 'गरम कोट' लिखा तो 'हुमायूँ' को ही पहले भेजा, मगर लौटा दिया गया। कारण पूछा तो ज्वाब मिला कि वर्तनी और भाषा की त्रुटियाँ हैं। मामूली किस्म की ग़लतियाँ थीं, जिन्हें शुद्ध किया जा सकता था, मगर सम्पादक महोदय कहानी के शिल्प और घटना-विषयक सौन्दर्य से निःसन्देह अपरिचित थे। बेदी साहब को बहुत रंज हुआ। उनका साहस तब बढ़ा, जब मआदत हसन मंटो ने (जो अभी बेदी साहब से परिचित नहीं हुए थे) 'मुसव्विर' बम्बई में आपकी कहानियों की समीक्षा आरम्भ की, और बहुत प्रशंसा की, तथा 'गरम कोट' को रूसी साहित्य की कहानियों के समान स्थान दिया। (हरबंस सिंह)

डाकख़ाने में बेदी को बहुत काम करना पड़ता, और हर प्रकार का काम करना पड़ता, क्योंकि ड्यूटी के वक़्त निश्चित नहीं थे। कई बार सत्रह-अठारह घंटे ड्यूटी देनी पड़ती। यही वह काल था जब बेदी ने गम्भीर कहानियाँ लिखीं थीं। वह रोमांटिक कहानियों और अगड़म-बगड़म निबन्ध और अनुवादों के दौर से बाहर निकल आये थे, और जीवन के लाभप्रद अनुभवों के आधार पर अपनी कहानियों की रचना करने लगे थे। यही वे कहानियाँ हैं, जो सन् 1936 में इनके पहले संग्रह 'दाना-ओ-दाम' की शोभा बनीं, और सन् 1941 में, जब इनका दूसरा संग्रह 'ग्रहन' प्रकाशित हुआ तो वह उर्दू के उत्कृष्ट कहानीकार घोषित किये जा चुके थे। पहले संग्रह में चौदह और दूसरे में पन्द्रह कहानियाँ हैं, और दो-तीन कहानियों को छोड़कर शेष सभी बेदी की सर्वोत्तम रचनाएँ मानी जाती हैं। बेदी की सुरुचि इससे प्रकट होती है कि अपनी आरम्भिक रूमानी रचनाओं में से उन्होंने एक भी रचना इन संग्रहों में सम्मिलित नहीं की। अपनी उत्तम साहित्यिक और शिल्पगत उत्कृष्टता के कारण ये दोनों पुस्तकें पाठकों के मस्तिष्क में एक उच्च कोटि के कवि की चयनिका

(anthology) की भांति घर कर गयी हैं। पाठक इन संग्रहों के अन्य नाम, या इनमें सम्मिलित कहानियों के किसी दूसरे क्रम को किसी भी तरह सहन करने को तैयार नहीं हैं। संग्रह-रूप में प्रकाशित होने से पूर्व ये कहानियाँ पत्रिकाओं में छपती रहीं, और लोग इन्हें पढ़कर बेदी के प्रशंसक बनते गये, लेकिन बेदी को सदा यह सन्देह बना रहा कि वह अच्छे कहानीकार नहीं हैं। हरबंस सिंह लिखते हैं, "यही सोचते कि मेरी कहानी अमुक की तुलना में कमज़ोर है। जो लिखते बार-बार सुनाते, परामर्श लेते और दुरुस्त करते। उन दिनों के विशेष मित्र श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की सम्मति, और 'हल्का-ए-अरबाबे ज़ौक' (साहित्य-मण्डल) लाहौर की संगोष्ठियों में प्रस्तुत आलोचनाएँ आपको बहुत प्रभावित करतीं। सब मित्र उनका बहुत आदर करते थे, और बेदी साहब तो साधारण समझ वालों और अल्पशिक्षितों की सम्मति को भी बहुत महत्त्व देते थे। जब 'दाना-ओ-दाम' छपी और उसकी बहुत प्रशंसा हुई और विशेष रूप से जनाब आले अहमद सरूर साहब ने बहुत सराहा तो बेदी साहब बहुत प्रसन्न और कृतज्ञ हुए"।

यह भी कहा जाता है कि डाकख़ाने में जब बेदी की ड्यूटी मनीआर्डर काउंटर पर लगी तो उन्हें बीच में जो भी थोड़ा समय मिलता, उसमें वह काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर कहानियाँ लिखने बैठ जाते। उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कहानी 'दस मिनिट बारिश में' और 'हम दोश' इसी तरह लिखी गईं थीं। उस ज़माने में उनके साहित्यिक महत्त्व का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि लाहौर की एक सशक्त पत्रिका 'अदबे लतीफ़' के वह अवैतनिक सम्मानित सम्पादक बना दिये गये। इससे बेदी को कोई आर्थिक लाभ तो नहीं हुआ, पर पत्रिका के सम्पादकत्व से इनमें और भी अधिक आत्मविश्वास पैदा हो गया। उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार उनसे मिलने के इच्छुक रहते, और जब मिलने जाते तो देखते कि एक अनुपम कहानीकार डाकघर में बैठा चिट्ठियों पर मुहरें लगा रहा है।

हरबंस सिंह लिखते हैं, "एक दिन तंग आकर उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। भूखों मरने लगे। आय का साधन रेडियो-कहानी या नाटक ही था जिसका शुल्क 25 रु. होता था। बेदी साहब ने रेडियो आर्टिस्ट के स्थान के लिए प्रार्थनापत्र दे रखा था। जनाब अहमद शाह बुख़ारी 'पतरस' उन दिनों आल इण्डिया रेडियो के डाइरेक्टर जनरल थे। बेदी साहब से भेंट तो नहीं हुई थी, पर वह उनकी रचनाओं से परिचित थे। उस स्थान के लिए कम-से-कम ग्रैजुएट होना आवश्यक था, पर बेदी साहब केवल इन्टरमीडियेट ही पास थे। डरते थे कि नौकरी नहीं मिलेगी। दिल्ली से वापसी पर बताया कि इन्टरव्यू के समय पतरस साहब उठकर उनसे गले मिले। यह घटना सुनायी और उनकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। सन् 1943 में बेदी की नियुक्ति लाहौर रेडियो स्टेशन पर 'स्क्रिप्ट राइटर' के रूप में हो गयी"।

बेदी का विवाह सन् 1934 में जबकि इनकी उम्र 19 वर्ष की थी एक रूपसी कन्या सतवन्त कौर से हुआ, जिससे इन्हें दो लड़के और दो लड़कियाँ पैदा हुईं। सतवंत कौर एक सुघड़, त्यागशील और सेवा करनेवाली पत्नी सिद्ध हुई। वेतन कम और परिवार बड़ा

था। अपने बच्चों के अतिरिक्त दो भाई और एक बहिन थीं। घर कैसे चलता था — बेदी को ख़बर नहीं, क्योंकि घर की देखभाल सतवन्त कौर करती थीं। सिलाई और कढ़ाई का काम करके, अख़बारों की रद्दी बेचकर, अत्यन्त मितव्यता से उन्होंने कुनबा चलाया। सतवंत कौर में बेदी ने नारी का सौन्दर्य और उसकी 'रोमानियत' भी देखी थी और नारी के मातृगत उत्कृष्ट सद्‌गुणों की शोभा भी। बेदी की कहानी 'गरम कोट' में सौन्दर्य और 'रोमानियत' की झलकियाँ, और 'अपने दु:ख मुझे दे दो' की इन्दु में त्यागभावना और मातृसंबंधी विशिष्टताएँ सतवंत कौर ही की देन हैं।

लाहौर रेडियो स्टेशन की नौकरी के दिनों में उन्होंने रेडियो के लिए कई नाटक लिखे। दूसरे महायुद्ध के दौरान उनकी तबदीली सीमान्त के रेडियो स्टेशन पर हो गयी। वेतन पाँच सौ मासिक। एक वर्ष काम करने के बाद त्यागपत्र देकर लाहौर चले आए, और 'महेश्वरी फ़िल्म कम्पनी' में छह सौ रुपए मासिक पर नौकरी कर ली। इस कम्पनी के लिए उन्होंने पहली और अन्तिम फ़िल्म लिखी 'कहाँ गये' जो कि 'यथा नाम तथा गुण' सिद्ध हुई। फिर उन्होंने 'संगम पब्लिशर्स लिमिटेड' के नाम से एक प्रकाशन-संस्था स्थापित की। अन्य किताबों के अतिरिक्त इन्होंने अपने नाटकों का संग्रह 'सात खेल' इसी संस्था से प्रकाशित किया। किताबों का काफ़ी बड़ा संग्रह इस संस्था के पास था, और अच्छी आमदनी की सम्भावना थी कि देश का बटवारा हो गया। फ़सादों की आग भड़क उठी। सब कुछ छोड़-छाड़ कर अपने भाई हरबंस सिंह के यहाँ रोपड़ चले गये जो वहाँ कॉलेज में लेक्चरर थे। फिर वहाँ से शिमला पहुँचे, लेकिन शिमला भी फ़सादों की लपेट में आ गया। जिस मकान के ऊपरी हिस्से में वह ठहरे थे, उसके नीचे मुसलमानों का एक परिवार रहता था। फ़सादियों ने इस मकान को घेर लिया। शिमला में बेदी के एक मित्र थे ईश्वर सिंह, जो एक अच्छे चित्रकार थे। बेदी ने ईश्वरसिंह को साथ लिया और एक नकली फ़ौजी परमिट लिये फ़सादियों के बीच इस तरह दाख़िल हुए जैसे कि वह सचमुच फ़ौज के आदमी हों। मुसलमान-परिवार को, जिसमें औरतें अधिक और मर्द कम थे, विश्वास दिलाया और जोश में आयी भीड़ से इन्हें बचाकर निकाल लाये।

हरबंस सिंह एक अन्य घटना की भी चर्चा करते हैं। लिखते हैं, "कुछ लोग एक आदमी को घेरे हुए थे, जो बहुत परेशान था। चिल्ला रहे थे कि यह मुसलमान है, हमें पता लग चुका है। मार डालने का संकल्प किये हुए थे। बेदी साहब और ईश्वर सिंह ने बढ़कर कहा कि इसे हमारे हवाले कर दो। हम इसे ठिकाने लगा देंगे। हाथ में लंबी किरपान देखकर इसे भाई साहब के हवाले कर दिया गया। यह उसे घर लाये, खिलाया-पिलाया, और सुरक्षित रूप से रवाना किया।"

उर्दू के प्रसिद्ध कवि हफ़ीज़ जालन्धरी भी उन दिनों शिमला में थे। उन्हें भी बचाना ज़रूरी थी। किसी-न-किसी तरह उन्हें भी ढूँढ निकाला। विदाई के क्षण में हफ़ीज़ ने अति आर्द्र स्वर में यह शेर पढ़ा —

हममें थी कोई बात याद तुम न आ सके,
हमने तुम्हें भुला दिया तुम न हमें भुला सके।

बाद में हफ़ीज़ ने इन घटनाओं की चर्चा रेडियो लाहौर से भी की।

इसी बीच बेदी की पत्नी और बच्चे शिमला आ चुके थे। बेदी उन्हें लेकर फिर दिल्ली की ओर रवाना हुए। लाहौर में माडल टाउन में इनका मकान लुट चुका था, और अब लाहौर जाने की कोई सम्भावना ही न थी। भारत में आकाश को छोड़कर सिर पर कोई छत न थी। बेदी सच्चे अर्थों में घर-बार से उजड़ कर पत्नी और बच्चों के साथ शिमला से निकले। कालका से रेलगाड़ी ली। अन्दर दाख़िल होने को जगह न थी। किसी प्रकार से पत्नी तथा बच्चों को अन्दर दाख़िल किया, और स्वयं छत पर जा बैठे। रेल एक पुल से गुज़री तो पगड़ी उड़ गयी, मगर सिर बच गया।

हरबंस सिंह लिखते हैं, "इधर कुछ लोगों ने जिनमें से एक पुलिस इन्सपेक्टर भी था, भाभीजी से, जो सुन्दर थीं, मज़ाक करना शुरू कर दिया। जब गाड़ी अम्बाला पहुँची तो बच्चों ने चीख़ो-पुकार करके बेदी साहब को नीचे बुला लिया। जब उन्होंने इन शरारती आदमियों से पूछताछ की तो वह पूछने लगे, 'सरदार साहब आपका शुग़ल क्या है ?' कहा कि मैं उर्दू कहानियाँ लिखता हूँ, इस पर बहुत क़हक़हे लगे।"

दिल्ली में 'आजकल' पत्रिका के सम्पादन के लिए कोशिश की, पर इसी बीच उर्दू-लेखकों का एक प्रतिनिधि-मण्डल सरकार की ओर से कश्मीर गया। बेदी साहब के पास उन दिनों कोई कामकाज नहीं था। "जब वापस आने लगे तो शेख़ अब्दुल्ला साहब, जो उन दिनों चीफ़ मिनिस्टर थे, कहने लगे कि बाक़ी सब लोग जा सकते हैं, मगर एक आदमी को मैंने हिरासत में ले लिया है। सब हैरान होकर एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। संकेत बेदी की ओर था जिन्हें उन्होंने 'डायरेक्टर, जम्मू रेडियो' के पद पर नियुक्त कर दिया। बेदी साहब बाद में बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद साहब से किसी विषय पर असहमत होने के कारण नौकरी छोड़कर चले आये।" (हरबंससिंह)

अब बेदी ने बम्बई की ओर रुख़ किया, जहाँ वह अन्तिम समय तक रहे। ख़ूब फ़िल्में बनाईं, और ख़ूब कहानियाँ लिखीं। फ़िल्मी दुनिया में बेदी आदर-भरी दृष्टि से देखे जाते और लोग उनका सम्मान करते थे। कारण यह था कि उन्होंने अपने कलाकार से सम्बद्ध व्यक्तित्व को व्यावसायिक और फ़ार्मूला फ़िल्म के गठबन्धन से बचाये रखा। उनकी फ़िल्म 'दस्तक' ने, जो उनके एक नाटक 'नकले मकानी' पर आधारित थी, आर्ट और अलग ढंग की फ़िल्म के प्रति जनता की रुचि को बढ़ाया। उनकी पहली फ़िल्म 'बड़ी बहन' थी, जिसे प्रोड्यूसर कश्यप जी ने बनाया। अगली फ़िल्म 'दाग़' थी, जिसे मशहूर निर्देशक अमिय चक्रवर्ती ने निर्देशित किया था, और जिसमें दिलीपकुमार ने नायक की भूमिका निभायी। यह फ़िल्म बाक्स आफ़िस पर भी बहुत सफल हुई। इसकी सफलता में बेदी के चमकदार संवादों का बड़ा हिस्सा था। संवाद-लेखन में बेदी ने एक और शिखर उस समय छुआ,

जब उन्होंने 'देवदास' के संवाद लिखे। 'देवदास' की दूसरी बार सफलता में जहाँ इसके निर्देशक विमल राय और नायक दिलीप कुमार का बड़ा हिस्सा था, वहाँ बेदी के संवादों ने फ़िल्म की रूमानी, कारुणिक और नाटकीय घटनाओं को प्रभावशाली बनाने में आवश्यक भूमिका निभायी। विमल राय ही के लिए बेदी ने वह रोचक और रोमांटिक कहानी लिखी जो रुपहले परदे पर 'मधुमती' के नाम से दिखायी गयी। बेदी ने अपनी कहानी 'गरम कोट' को भी फ़िल्माया जो इतनी सफल नहीं रही। जब यह खबर फैली कि बेदी 'मिरज़ा ग़ालिब' के संवाद भी लिख रहे हैं तो कुछ लोगों को हैरानी भी हुई, क्योंकि बेदी की सर्जनात्मक प्रकृति यथार्थवादी, और अपनी ज़मीन से जुड़ी हुई थी, और यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह अपने संवादों में मुग़लिया सभ्यता की ऐश्वर्यशीलता और सुकुमारता प्रस्तुत कर सकेंगे। परन्तु जैसा कि बेदी के नाटकों से स्पष्ट है कि वह संस्कृत-मिश्रित हिन्दी और फ़ारसी-मिश्रित उर्दू दोनों पर एक-समान अधिकार रखते थे। 'मिरज़ा ग़ालिब' के संवादों की विशिष्टता है—परिहास, मर्म-स्पर्शिता और व्यंग्य-विनोद, जो 'मिरज़ा ग़ालिब' के परिवेश को यथार्थ का वह रंग प्रदान करती है जो साधारणतया मुग़लिया ठाठ-बाट वाली इस प्रकार की फ़िल्मों में नहीं मिलता। इनके अलावा बेदी ने ऋषिकेश मुकर्जी के लिए 'अनुपमा' और 'सत्यकाम' जैसी फ़िल्में बनाईं। दोनों फ़िल्मों का चित्र-नाट्य, संवाद और उनकी मनोवैज्ञानिक और चारित्रिक गहराइयाँ बेदी के सर्जनशील मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब हैं। इन फ़िल्मों के अतिरिक्त 'बहारों के सपने' और 'मेरे हमदम, मेरे दोस्त' भी बेदी के नाम से जुड़ी हैं। इसी बीच बेदी का बेटा नरेन्द्र भी एक सफल निर्देशक बन चुका था। अपने बेटे नरेन्द्र के परामर्श पर बेदी ने एक व्यावसायिक फ़िल्म 'फागुन' बनाई, जो बुरी तरह असफल रही। अन्तिम अवस्था में उन्होंने हरिजनों की समस्या पर एक फ़िल्म 'आँखिन देखी' भी पूरी की, पर वह रिलीज़ न हो सकी।

बम्बई में बस जाने के बाद बेदी तीव्र इच्छा के होते हुए भी कहानी-रचना के लिए बहुत समय न निकाल सके। फिर भी, उनकी कहानियों के चार संग्रह प्रकाशित हुए—'कोख जली' सन् 49 में, 'अपने दुःख मुझे दे दो' सन् 65 में, 'हमारे हाथ क़लम हुए' सन् 74 में, और 'मुक्तिबोध' सन् 83 में। 'कोखजली' में तेरह कहानियाँ हैं, जो दिल्ली, लाहौर और जम्मू निवास के दिनों में लिखी गयी थीं। 'अपने दुःख मुझे दे दो' में नौ कहानियाँ हैं, और 'हाथ क़लम हुए' में दस। 'मुक्तिबोध' में कहानियाँ केवल छह हैं, शेष निबन्ध और व्यक्तिपरक रेखा-चित्र हैं।

फ़िल्मों में सफलता प्राप्त करने पर भी बेदी को अपने बम्बई के जीवन से सदा असन्तोष की अनुभूति बनी रही। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम अपने एक पत्र में वह लिखते हैं :

> "उपेन्द्र, यहाँ की कुछ प्रतिकूल स्थितियों को देखते हुए कभी-कभी मुझे सोचना पड़ता है कि मैंने बम्बई में आकर कोई ग़लती तो नहीं की। लिखना-पढ़ना बिल्कुल छूट गया है। स्वास्थ्य तो यहाँ की दूषित जलवायु की भेंट हो चुका है। इस पर

यह नहीं कि कोई बैंक बैलेन्स बन गया हो। जो आता है ख़र्च हो जाता है। कोई मकान नहीं, मोटर नहीं—हाँलाकि ये दोनों चीज़ें मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं थीं और न हैं, परन्तु मैं सोचता हूँ, कि मैं इसके सिवा करता भी क्या ?"

बेदी फ़िल्में बनाते रहे, अफ़साने लिखते रहे, महफ़िलों में लतीफ़े सुनाते रहे। वह अपने हँसमुख स्वभाव से लोगों का दिल जीत लेते, पर इस ख़ुश रहने के पीछे काम के बोझ और दैनिक जीवन की चिन्ताओं में दबे हुए इस व्यक्ति को बहुत कम लोग देख पाते, जिसे धन और ख्याति की इतनी अभिलाषा नहीं थी, जितनी कि मानसिक शान्ति की। 'अश्क' के नाम एक पत्र में लिखते हैं :

"अब तुम्हारी तबीयत कैसी है ? मैं भी इतना अधिक ऊब चुका हूँ कि दस-पन्द्रह दिन के लिए किसी स्वास्थ्य-वर्धक स्थान पर भाग जाना चाहता हूँ। यूँ, मैं इधर-उधर कई स्थान पर गया हूँ, पर तुम हैरान होगे कि जब से मैंने ज़िन्दगी शुरू की है (सन् 1933 में पोस्ट ऑफ़िस में नौकर हुआ था), उस समय से अब तक ऐसा नहीं हुआ कि मैं काम-काज भूल कर पन्द्रह दिन के लिए कहीं विश्राम करने निकल गया होऊं। यदि कहीं गया हूँ तो किसी काम के सम्बन्ध में — दिमाग़ पर बोझ लेकर। अब तो अन्दर की खिंचावट पूरी तरह से ढीली हो चुकी है।"

अपने पूरे जीवन का रेखाचित्र बेदी ने कुछ संकेतों में प्रस्तुत कर दिया है :

"नौ साल डाकख़ाना में नौकरी की, रेडियो में चले गये . . . . . . बटवारा हुआ . . . . . हिंसा और विनाश . . . . . . ख़ून से लिथड़े हुए शरीर . . . . . . नंगे ही रेल की छत पर दिल्ली पहुँचना . . . . . . स्टेशन डायरेक्टर जम्मू रेडियो स्टेशन . . . . . . रियासत की प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था से लड़ाई . . . . . फिर बम्बई . . . . . अच्छी फ़िल्में . . . . बुरी फ़िल्में . . . . कहीं कहीं बीच में कहानियों की कोई किताब . . . . . . फिर हाथ क़लम करते रहे (कारुणिक घटनाएँ लिख-लिखकर मानो अपना हाथ काटते रहे) :

लिखते रहे जुनूँ[1] की हिकायते ख़ूँ-चिकाँ[2]
हर चन्द इसमें हाथ हमारे क़लम हुए।

फिर कोई जीविका . . . . . . ऐसे क्षण जो बुद्ध पर भी न आए . . . . . ऐसे पल जो अजामिल भी न जी सका . . . . पत्नी के प्रति बहुत कम रुचि . . . . पत्नी की मेरे प्रति प्रणयभाव की समाप्ति , ... कारण ? — अधेड़ आयु का सिड़ीपन . . . . बड़े बेटे का मुझे व्यापारिक रूप में मूर्ख समझना, और मेरा उसे पैसे का पुजारी और उत्तरदायित्व-शून्य . . . . . . भला कोई बात हुई।"

(आईने के सामने)

---

1. उन्मत्तता 2. कहानियाँ जिनमें से लहू टपकता है।

जीवन की इस बिखराहट में बेदी के मन में दो अभिलाषाएँ थीं — एक तो लिखना और दूसरी स्वान्तःसुख। लिखते हैं :

> "बिना अभिलाषाओं के मेरी एक ही अभिलाषा है कि मैं लिखूँ — पैसे के लिए नहीं, किसी प्रकाशक के लिए नहीं, मैं बस लिखना चाहता हूँ।"

अपनी दूसरी इच्छा और उसकी उत्कटता की चर्चा वह अत्यन्त प्रभावशाली रूप में करते हैं :

> "मैं एक सादे से इन्सान की तरह जीना चाहता हूँ — चाहने का अभिप्राय निकाल कर, एक ऐसे स्थान पर पहुँचने की अभिलाषा रखता हूँ — अभिलाषा से इन्कार करते हुए, जिसे साधारण भाषा में 'सहज अवस्था' कहते हैं, और जो केवल जानने के बाद आती है, और मैं नहीं जानता।" (आईने के सामने)

डॉ. असलूब अहमद अन्सारी की दृष्टि में बेदी प्रेमचन्द के बाद उर्दू के सबसे बड़े कहानीकार हैं। इस मान्यता का अनुमोदन करनेवाले समीक्षकों की सूची में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है, चुनाँचे बाक़िर मेंहदी लिखते हैं :

> "उर्दू कहानी पर लेखक-त्रय का अधिकार था और अब भी वे छाये हुए हैं। वे तीन हैं — राजिन्द्र सिंह बेदी, सआदत हसन मंटो और कृशनचन्दर। नामों में क्रम बदला जा सकता है, पर इस वास्तविकता से इन्कार करना कठिन होगा कि उर्दू कहानी को ख्याति और किसी सीमा तक उत्कृष्टता प्रदान करने में इन्हीं तीनों नामों की चर्चा होती रही है, और अभी कुछ समय तक होती रहेगी। मैं ने इस 'त्रयी' में राजिन्दर सिंह बेदी को चुना है। मेरा विचार है कि मंटो और कृशनचन्दर की कहानियाँ दो-तीन बार पढ़ने के बाद अपनी ताज़गी और अपना प्रभाव खो देती हैं, लेकिन बेदी की कहानियाँ धीरे-धीरे, अर्थात् हर बार पढ़ने पर, अपने नये द्वार खोलती जाती हैं। उन्होंने कम लिखा और अच्छा लिखा है। बहुत संभव है वह मंटो और कृशन की तरह बहुत लिखते और ख़राब लिखते। पर बात कम और अधिक लिखने की नहीं, विचारणीय विषय है शिल्प का। बेदी ने जानबूझकर कम लिखा है। अनुरोध उनसे भी किये जाते थे। उन्हें भी ख्याति, सम्मान और धन उतना ही प्रिय था जितना कि मंटो और कृशन को। यह कलाकार की निजी सर्जनशीलता का प्रश्न है। वह भी मंटो की तरह तेज़ी से कहानी-लेखन की कला जानते थे, परन्तु वह लिखने के बाद अन्तराल देने में विश्वास रखते थे। बार-बार उसे दुरुस्त करने की चिन्ता उन्हें प्रकाशित कराने से रोकती थी। वह अपनी लेखनी को अपने वश में रखने में बुद्धिमत्ता समझते थे।"
>
> (बेदी के निगारख़ाना में मेरा तीसरा नाकाम सफ़र :
> बाक़िर मेंहदी, साबरनामा सन् 1985)

कम लिखना, अन्तराल देना, कतर-ब्योंत करना, सोच-सोच कर लिखना — ये ऐसी

विशेषताएँ हैं जिनकी अनुभूति स्वयं पाठक को कहानी पढ़ते समय होती है। मंटो ने भी बेदी के सम्बन्ध में कहा था कि बेदी तुम सोचते बहुत अधिक हो। स्वयं बेदी अपने संग्रह 'दाना-ओ-दाम' की भूमिका में लिखते हैं : "कोई—कलम उठाया कि लिख दिया, तो कोई—चेख़व के कथनानुसार—इस तरह धीरे-धीरे लिखता है जैसे कि लोभी (पर कंजूस) भुना हुआ तीतर खाता है।" इस सम्बन्ध में जोगेन्द्र पाल ने बहुत पते ही बात कही है : "बेदी सोच-सोच कर लिखने का आदी है, और उसका पाठक भी सोचों के घेरे में आकर उसे रुक-रुक कर पढ़ता है, मानो कहानी को स्वयं अपने जीवन से सम्बन्धित समझकर आगे बढ़ रहा हो। पाठक की तलाश की इस गुंजाइश को ध्यान में रखकर बेदी ने अध्ययन को मानो सर्जनशीलता की सीमाओं से जोड़ दिया है।" एक और स्थान पर जोगेन्द्र पाल कहते हैं : "यही कारण है कि बेदी को तेज़-तेज़ पढ़ने से उसके लिखे हुए का एक सिरा उँगलियों से फिसल जाता है। इस सिरे को पकड़ में लाना अभीष्ट हो तो उलझे हुए बारीक तागे को सँभाल-सँभाल कर सीधा करना होगा। जल्दी में झटक देने से हम उसे बीच में ही कहीं तोड़ बैठेंगे।"

यही कारण है कि बेदी की अन्तिम समय की कहानियाँ लोगों को उनकी आरम्भिक कहानियों की तुलना में कठिन और दुर्बोध प्रतीत होती हैं। वास्तविकता यह है कि तेज़, फ़र्राटे भरते हुए पढ़ते चले जाना बेदी की कहानियों के साथ कभी न्याय नहीं कर सकता। इन्हें केवल रुक-रुक कर ग़ौर से पढ़ना पड़ता है, बल्कि वास्तविक अभिप्राय तक पहुँचने के लिए बार-बार पढ़ना पड़ता है। क्योंकि बेदी की कहानी कला की विभिन्न रंगीनियों, मानसिक गहराई और सांकेतिक तथा मिथकीय अर्थच्छायाओं को धारण किये होती है, अतः इसे जितनी बार पढ़ा जाए वह अर्थवत्ता, आह्लाद और आश्चर्य की नूतन दिशाएँ लेकर हमारे सामने आती है। यदि बेदी को अपने कई कथाकारों के समान ख्याति और लोकप्रियता नहीं मिली तो इसका कारण भी यही है कि बेदी ने लोकप्रियता के सरलता से सुलभ साधनों से दूर रहकर शिल्पीय मान्यताओं पर अपनी कहानियों की नींव रखी। बेदी की यह दृष्टि बुद्धि-संगत है। वह ख़राब आर्ट और अच्छे आर्ट में अन्तर जानते थे—उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम अपने एक पत्र में लिखते हैं :

> "यहाँ भी हमारे साथियों ने इस कहानी की ओर उतना ध्यान नहीं दिया, जितने की वह इसकी अधिकारिणी थी, पर मैंने इसकी चिन्ता नहीं की, क्योंकि मुझे उसमें पूरा विश्वास था। ऐसा व्यवहार मेरे साथ काफ़ी समय से होता आया है और अन्ततः मैंने यह भी देखा है कि वे मुझे अच्छे-अच्छे लेखकों से उच्च समझते रहे हैं। हंगामी युग में हंगामी चीज़ें ज़रा भी ध्यान नहीं आने देतीं, पर अन्ततः मौलिक रूप में अच्छी चीज़ समय की परीक्षा ले लेती है—वह 'उत्कृष्ट साहित्य' कहाती है और बाकी चीज़ों को लोग भूल जाते हैं।"

इसका यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं कि बेदी की कहानियों को ख्याति और लोकप्रियता

नहीं मिली। बेदी की उत्कृष्टता से किसी को इन्कार नहीं था, पर उनकी शिल्पगत उत्कृष्टता ने जिन कल्पनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक और दार्शनिक तत्त्वों से आकार ग्रहण किया है, उसके प्रति समीक्षात्मक दृष्टि डालना अभी बहुत प्रचलित नहीं हुआ था। कथा-साहित्य की समीक्षा ने अभी अपनी जड़ें इतनी दृढ़ नहीं की थीं। फिर, निबन्ध इतने थोड़े लिखे जाते थे कि उनमें इतनी गुंजाइश नहीं थी कि कहानियों पर ढेरों बहस की जाती। अलग-अलग कहानियों के विभिन्न अंगों एवं तत्त्वों के अध्ययन का प्रचलन भी बहुत अधिक नहीं हुआ था। कविता के विभिन्न तत्त्वों की विश्लेषणात्मक समीक्षा से तो समीक्षक परिचित थे, पर कहानी की समीक्षा-पद्धति अभी परवान नहीं चढ़ी थी। बेदी को समीक्षकों ने दृष्टि से ओझल नहीं किया, अपितु आरम्भ से ही उनकी चर्चा बहुत जोश के साथ होती रही—पर प्रायः ऐसे लेखों में जिनमें युगीन कहानी-साहित्य की गति-विधि का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जाता।

स्पष्ट है कि ऐसे सर्वेक्षणों में जो बातें कही जातीं वह [किसी विशिष्ट कहानी से सम्बन्धित न होने के कारण] साधारण प्रकार की होतीं और उनमें वह गम्भीर समीक्षा-दृष्टि न होती जो केवल किसी एक कहानीकार और उसकी कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियों के गम्भीर अध्ययन से पैदा होती है। अब तो बेदी पर काफ़ी लेख लिखे जा चुके हैं और कम-से-कम एक दर्जन से अधिक कहानियों की कलात्मक समीक्षाएँ भी हो चुकी हैं। इतना होने पर भी बेदी के प्रशंसक पाठकों को इन निबन्धों से एक प्रकार के असन्तोष की अनुभूति होती है। ऐसा लगता है कि अभी तक बेदी की कहानियों की अर्थवत्ता और शिल्पगत गहराइयाँ समीक्षकों की पकड़ में नहीं आयी हैं। ये कहानियाँ अधिक एकाग्रता, अधिक ध्यान व चिन्तन, और एक नई दृष्टि का अनुरोध करती हैं जो कि हमारी समीक्षा-पद्धति अभी तक जुटा नहीं पायी।

हाँ, डॉ. गोपीचन्द नारंग का लेख 'बेदी की रूपकीय और मिथकीय जड़ें, तथा बेदी की कहानी 'एक बाप बिकाऊ है' की वह तात्त्विक समीक्षा, जो डॉ. नारंग ने 'इज़हार' पत्रिका में प्रस्तुत की थी — न केवल बेदी की समीक्षा-परिधि में, अपितु उर्दू में कथा-साहित्य की समीक्षा के इतिहास में — एक नयी दिशा, एक नये मोड़ और एक चिन्तन-पूर्ण परम्परा-विरोध का स्थान रखते हैं। अत्यंत सुन्दर शैली और गम्भीर आलोचनात्मक दृष्टि से लिखे गये इन लेखों ने कहानियों के अध्ययन और विश्लेषणात्मक समीक्षा को कलात्मक सूझबूझ और चिन्तनपूर्ण गम्भीर दृष्टि के उस धरातल पर पहुँचा दिया है जहाँ काव्य से सम्बद्ध केवल उत्कृष्ट समीक्षा ही उड़ान भरा करती है।

नारंग के इस विचार से असहमत होने की गुंजाइश ज़रूर निकलती है कि बेदी की कला में रूपक और मिथक बुनियादी और एक कुंजी के समान महत्त्व रखते हैं। कहा जा सकता है कि रूपक और मिथक भी बेदी की अन्य शिल्पगत विशेषताओं में से दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, पर इन्हें एक कुंजी के समान महत्त्व देने में उनकी अन्य विशेषताओं और

गुणों के खो जाने की आशंका बनी रहती है। किन्तु नारंग की स्थापना वस्तुतः नितान्त यह नहीं है, क्योंकि नारंग बेदी के यहाँ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक यथार्थ-चित्रण पर भी उतना ही विश्वास रखते हैं जितना कि उनकी प्रतीकात्मक और मिथकीय कल्पना-जन्य प्रस्तुति पर। परन्तु कला के किसी एक पक्ष को 'कुंजी' के रूप में स्वीकार कर लेने का अनुरोध प्रायः केवल समीक्षक की उस सुरुचि का होता है जो परम्परा-विरोध-विषयक चिन्तन के अधीन स्वाभाविक रूप से पैदा होता है। जो हो, इस हठधर्मिता-पूर्ण और बाल की खाल निकालने वाली दृष्टि से नितान्त दूर रहकर, बेदी के सम्बन्ध में नारंग के लेख कथा-साहित्य पर साधारणतया प्रचलित रस्मी प्रकार की, और परम्परागत अपितु पुरानी पड़ चुकी और घिसी-पिटी समीक्षा से — एक ऐसा अलगाव प्रस्तुत करते हैं जो कि बिल्कुल हटकर और नव्य विशिष्टताओं से परिपूर्ण है। और यदि यह कहा जाए कि इन लेखों से उर्दू कहानी-सम्बन्धी समीक्षा ने संरचनात्मक समीक्षा की पद्धति सीखी है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिए मैं इन लेखों को प्रशंसनीय मानता हूँ। बाक़िर मेंहदी की मित्रता के बावजूद बेदी नारंग का बहुत आदर करते थे तो इसमें नारंग के आकर्षक व्यक्तित्व का कुछ न कुछ प्रभाव तो होगा ही, पर मैं समझता हूँ कि इसका वास्तविक कारण नारंग के ये लेख थे जिनमें बेदी को अपनी कला की सही पहचान और परिचय दिखायी दिया होगा।

बेदी ने उन पर लिखे गये लेखों से कभी असन्तोष प्रकट नहीं किया, जैसा कि एम. राशिद ने अपने पर लिखे गये लेखों से किया था। इस सम्बन्ध में बेदी अपने आपको बहुत छोटा समझने वाले व्यक्ति थे, लेकिन उन्हें हमेशा इस बात की जिज्ञासा लगी रहती थी कि उनकी कहानियाँ ठीक से लिखी गयी हैं या नहीं। उनमें आत्मविश्वास की कमी नहीं थी, और उनके आत्मविश्वास को समीक्षाओं से कोई सहारा भी नहीं मिलता था। उनकी उक्त अभिलाषा को उनकी हीनभावना से जोड़ा जाता है, पर इस अभिलाषा का सही कारण हमारी समीक्षा की दिशा-हीनता थी, जो कलाकार को यह बताने में अक्षम थी कि उनकी कहानियों की अर्थवत्ता और शिल्प का वह बुद्धि-संगत परीक्षण कर सकी है या नहीं। बेदी के विषय में जो कुछ लिखा जाता था, वह उसे सन्तोष तथा कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार कर लेते थे। अपनी कहानियों के बचाव में न तो उन्होंने मंटो की तरह बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं, और न इस्मत चुग़ताई की तरह आलोचकों को व्यंग्य की धार पर रखा। बेदी की यौन-सम्बन्धी परवर्ती कहानियों में जब सेक्स को विषय-वस्तु बनाया गया तो उनके बहुत से प्रशंसकों ने भी नाक-भौं चढ़ायी, लेकिन बेदी मौन रहे। जब बेदी ने बड़ी ताक़तों के राजनीतिक दुराचारों पर से परदा उठाया, और रूस और अमेरिका दोनों उनके व्यंग्य का निशाना बने, तब भी समीक्षकों के माथों पर बल पड़ गये, पर बेदी मौन रहे। बेदी की भाषा-शैली के विषय में बहुत-सी बे-सिर-पैर की बातें कही गयीं, पर बेदी ने कुछ बातों को छोड़कर अपने बचाव के लिए लम्बी-चौड़ी दलीलें पेश नहीं कीं। उन्होंने जो साक्षात्कार दिये या जो लेख लिखे उनमें भी अपनी कहानियों के बारे में कम ही बातें कीं, और साक्षात्कार

लेनेवाले सज्जनों ने भी ऐसे प्रश्न नहीं किये जो इनकी कुछ-एक कठिन कहानियों की गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होते। कहने का तात्पर्य यह कि वह एक अन्तर्मुखी और अपने को छोटा समझनेवाले व्यक्ति थे। अपने शिल्प और अपनी कहानियों के विषय में बढ़-चढ़ कर कहना उन्हें पसन्द नहीं था। बेदी के यहाँ शिकायतें और फ़रियादें नहीं मिलतीं कि उनका यथावत् आदर एवं समीक्षा नहीं हुई। न ही उनके यहाँ अपने को बड़ा समझने का भाव और बड़बोलापन है, जो वस्तुतः हीनभावना की ही प्रतिक्रिया-स्वरूप पैदा होता है। उन्हें अपनी कला पर पूरा विश्वास था, साथ ही यह अभिलाषा भी थी कि समीक्षा उनके इस विश्वास को उचित अधिकार के रूप में सिद्ध करे। इसमें हीनभावना का कोई प्रश्न नहीं था, जैसा कि साधारणतया समझा जाता है।

यह बात ध्यान में रहे कि बेदी की कहानियाँ पत्रिकाओं में प्रकाशित होते ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गईं, और जब उनका पहला संग्रह सन् 1936 में 'दाना-ओ-दाम' के नाम से प्रकाशित हुआ तो उनका नाम साहित्यिक क्षेत्र में ख्यात हो चुका था। अपने दूसरे संग्रह 'ग्रहन' के सन् 1941 में प्रकाशन के साथ ही वह उर्दू के प्रौढ़ कहानीकार स्वीकार कर लिये गये। उस युग के समर्थ आलोचकों और कलाकारों ने — उदाहरणार्थ रशीद अहमद सिद्दीकी, प्रो. मुहम्मद मुजीब, मुहम्मद हसन असकरी, पतरस, कृशनचन्दर, सआदत हसन मंटो, उपेन्द्रनाथ अश्क, कन्हैयालाल कपूर, इस्मत चुग़ताई, मिरज़ा अदीब, अज़ीज़ अहमद और वकार अज़ीम — ने इनकी महत्ता और उत्कृष्टता की सराहना की। वकार अज़ीम के कथनानुसार —

> "मुजीब साहब, जो रूसी साहित्य के अच्छे विद्यार्थी और कहानीकार हैं, जब बेदी का कहानी-संग्रह 'दाना-ओ-दाम' छपा तो बग़ल में दबाये फिरते थे और कहते थे कि मैंने आज तक उर्दू में इतना अच्छा संग्रह नहीं देखा।"

वकार अज़ीम लिखते हैं :

> "बेदी की कहानियों में मध्यम वर्ग के जीवन का घरेलू और दिन-प्रतिदिन का वातावरण है — क्लर्क हैं, उनकी जीवन-चर्या है, मज़दूर हैं और आर्थिक अभाव से दबे हुए ग़रीब हैं, लेकिन इन सब चीज़ों में उनका दृष्टिकोण केवल भावनात्मक नहीं, वह इससे भी आगे बढ़कर मानवता के विशाल और करुणामय दृष्टिकोण पर विश्वास रखते हैं।"

अज़ीज़ अहमद लिखते हैं :

> "राजिन्दर सिंह बेदी की कहानियाँ यथार्थ-घटना-परक होने के कारण ग्राह्य हैं, पर यह घटना-परकता कोरी नहीं है, वह रूमानियत और ऊर्वर कल्पना का सम्मिश्रण है।"

आगे चलकर जिन समीक्षकों ने बेदी का लोहा माना उनमें आते अहमद सरूर, मुमताज़ शीरीं, असलूब अहमद अन्सारी, मुहमद हसन, गोपीचन्द नारंग, बाकिर मेंहदी, मुज़फ़्फ़र

अली सय्यद और कमर रईस के नाम उल्लेख्य हैं। इन्हीं दिनों शम्सुल हक उस्मानी और सय्यद निसार मुस्तफ़ा की बेदी पर किताबें भी काफ़ी लोक-प्रिय हुईं।

असलूब अहमद अन्सारी लिखते हैं :

"बेदी की कहानियों की एक स्पष्ट विशेषता यह है कि वे जीवन के गम्भीर निरीक्षण और मानव-प्रकृति के गहरे अध्ययन का परिणाम हैं। बेदी अपने पात्रों के हृदय और आत्मा में उतर कर उनके एक-एक रहस्य को जानने और खोलकर प्रस्तुत करने का यत्न करते हैं। मानव-सम्बन्धों की ऊपरी परत और उनकी वास्तविकता का जैसा परिपक्व स्वरूप बेदी के यहाँ नज़र आता है, उर्दू के कम कहानीकारों के यहाँ मिलेगा।"

मुमताज़ शीरीं लिखती हैं :

"बेदी के यहाँ तीव्र मनोभावनाएँ, असाधारण घटनाएँ, तूफ़ानी दुर्घटनाएँ बहुत कम मिलती हैं। दैनिक जीवन की सामान्य से सामान्य घटनाएँ, साधारण मनोभावनाएँ और अनुभूतियाँ तथा सीधे-सादे यथार्थ को नरमी, बारीकी और पवित्रता से प्रस्तुत करने का इनमें चेख़व का-सा सलीका है, और उनकी कहानियों को सीधा-सादा यथार्थ ही चमत्कारपूर्ण और मनोरम बना देता है।"

आले अहमद सरूर लिखते हैं :

"प्रेमचन्द की आदर्श पर आश्रित यथार्थ की प्रस्तुति, जो कृशनचन्दर के यहाँ एक रूमानी यथार्थ की प्रस्तुति नज़र आती है, बेदी के यहाँ एक ऐसी यथार्थ-प्रस्तुति बन जाती है जो मिथकीय छाया के कारण यथार्थ से कुछ बड़ी और फैली हुई दिखायी देती है।"

डॉ. गोपीचन्द नारंग लिखते हैं :

"बेदी की कला में लाक्षणिक प्रयोगों और मिथकीय कल्पनाओं का मूलभूत आधार है . . . . . बेदी की सर्जनात्मकता कुछ इस तरह की है कि वह अपने पात्रों और उनकी मानसिकता के द्वारा जीवन के मूलभूत रहस्यों तक पहुँचने की तलाश करते हैं। इनके लाक्षणिक प्रयोग इकहरे या दोहरे नहीं पहलूदार होते हैं, ... इनकी मानसिकता में मानव के शताब्दियों के सोचने की प्रक्रिया की परछाइयाँ पड़ी हुई मालूम होती हैं। ऐसे में, काल का क्षण वर्तमान शताब्दियों की निरन्तरता में घुलमिल जाता है और छोटा सा घर पूरा संसार बनकर सामने आता है। बेदी जिस औरत और मर्द की चर्चा करते हैं वह केवल आज की औरत और आज का मर्द नहीं, उसमें वह औरत और मर्द शामिल हैं जो लाखों करोड़ों साल से इस भूमि की ज़्यादतियाँ झेल रहे हैं, और उसकी देन से आह्लादित भी होते चले आ रहे हैं।"

बेदी की कहानियों का केन्द्रीभूत पात्र एक सामाजिक व्यक्ति है। वह अपने परिवार, अपने समाज, अपनी सभ्यता, धर्म और आचार-सम्बन्धी वातावरण में जीनेवाला व्यक्ति है।

बेदी इस पात्र की प्रस्तुति में इसके चारों ओर के वातावरण को ऐसी गहराई से दिखाते हैं कि पात्र अपनी भूमि में बोया एवं जमा हुआ दिखायी देता है। वह दु:खी है, बुरी परिस्थितियों के शिकंजे में कसा हुआ है, लेकिन उखड़ा हुआ नहीं है। उसकी विडम्बना यही है कि वह उस भूमि में अपनी जड़ें जमाने की कोशिश करता है जो उस पर तंग हो चुकी है। यही कारण है कि बेदी की कहानियों में भारत की आत्मा धड़कती हुई महसूस होती है।

असलूब अहमद अन्सारी लिखते हैं :

> "उनकी कहानियाँ पढ़कर हमारे सामने उस स्नेहपूर्ण जीवन और रहन-सहन के चित्र उभर आते हैं जिसमें हम नित्य प्रति साँस लेते हैं। इन कहानियों में उस भारत का चित्र झलकता है जो करोड़ों जाहिल, ग़रीब, रूढ़ि-ग्रस्त लोगों का देश है, पर जिनमें उन सभी दुर्बलताओं और ग़लतियों के होने पर भी एक दृढ़ता, एक क्षमता, जीवन की मूलभूत अच्छाई में विश्वास, और कुछ-एक परम्परागत आस्थाओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। इन कहानियों में सामान्य मानव-प्रकृति का अध्ययन और अनुभूति जिस ईमानदारी और निष्पक्ष भाव से की गयी है, वैसा अन्य उदाहरण उर्दू में तलाश करना आसान नहीं।"

बेदी की कहानियों की शक्ति का रहस्य भी इस तथ्य में छुपा है कि उन्होंने साधारण मानव के जीवन से अपना सम्बन्ध दृढ़तापूर्वक जोड़ा है। साधारण मानव कठिन-से-कठिन स्थिति में जीवन से इस रूप में चिपटा रहता है कि उसके जीवन की यथार्थ प्रस्तुति में जहाँ कहानीकार की दृष्टि उसकी विपत्ति पर रहती है, वहाँ जीवन की उस शक्ति को भी देखता है जो नितान्त निराशा-पूर्ण स्थितियों में भी व्यक्ति को जीवित रहने के यत्न में जोते रखती है। भारत के निर्धन वर्ग के जीवन के गम्भीर अध्ययन से बेदी की कलात्मक कल्पना ने वह सुदृढ़ता और ताज़गी प्राप्त की जो वृक्ष को अपनी जड़ें पृथ्वी के अन्दर फैलाने के बाद प्राप्त होती है।

अपने एक इन्टरव्यू में बेदी कहते हैं :

> "जिसकी जड़ें उसकी ज़मीन में हैं, वह अपने जन-साधारण को, अपने लोगों को, यह होते हुए भी कि लोग अनाड़ी हैं, ग़रीब हैं — उनके दु:ख को समझेगा।"

एक और स्थान पर वह कहते हैं :

> "मिथकीय तत्त्वों का प्रयोग मैं भारतीय सभ्यता और आस्थाओं को प्रस्तुत करने के लिए करता हूँ। उनके देवी-देवता, उनके मन्दिर-मस्जिद — यह सब दिखाने की कोशिश करता हूँ। मैं अपने आप में न केवल भारतीय हूँ बल्कि भारत हूँ।"

कैसी अर्थपूर्ण बात कही है बेदी ने ! सच्ची कला उस समय तक निर्मित नहीं होती जब तक कलाकार आसपास के वातावरण एवं पर्यावरण को अपने प्राणों में समा नहीं लेता। मिथकीय तत्त्व (जिनकी ओर सबसे पहले नारंग की समीक्षा ने ध्यान दिलाया) बेदी के यहाँ कला को शोभित करने की ख़ातिर नहीं आये जैसा कि क्लासिकी कवियों के यहाँ काव्यत्व

के पल्ले में सलमा-सितारों की तरह टँके हुए नज़र आते हैं। मिथक बेदी के यहाँ रूपकों और उपमाओं की आवश्यकता पूरी नहीं करते, अपितु मिथक और रूपक, दोनों, इनके यहाँ उस जीवन से आते हैं जो भारतीय जन-साधारण—प्रकृति की बाँहों और सभ्यता के झकोरों में — शताब्दियों से जीता आया है। इसी जीवन की ही वह धारा है, जो इनकी कहानियों में भूमि के नीचे पानी की तरह बहती रहती है और उसकी नमी से कहानियों में मिथकों, रूपकों और उपमाओं के रंगारंग फूल खिलते रहते हैं।

बेदी के सम्बन्ध में प्राय: यह बात भी कही जाती है कि वह तीक्ष्ण और कठोर भावनाओं के कहानीकार नहीं, अपितु उनकी कहानियों में जीवन की मृदुल स्वरलहरी मिलती है। मेरा विचार है कि यह बात ठीक नहीं है। बेदी के यहाँ भी अति तीक्ष्ण और कठोर तथा करुणामयी और भयावनी भावनाओं का कारख़ाना है। यही कारण है कि इनकी कहानियों में भावनात्मक झकोरों को देखकर पाठक कभी-कभी सन्नाटे में आ जाता है। उदाहणार्थ, 'ग्रहन', 'रहमान के जूते' और 'एक चादर मैली-सी' का वातावरण पर्याप्त भयावह है। पर बेदी की विशेषता यह रही है कि वह अपनी कहानियों में किसी एक रंग को इतना गहरा नहीं करते कि कहानी एक-रंगी, अति नाटकीय और लोमहर्षक बन जाए। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह इस रंग को मद्धम या हल्का करते हैं। ऐसा करने का अर्थ होगा कहानी को प्रभावशून्य बना देना। इसके विपरीत बेदी कहानी का ताना-बाना कुछ इस तरह बुनते हैं कि जीवन के अन्य रंग इसी एक रंग के चारों ओर फैल जाते हैं। हम इसी एक रंग की तेज़ी और शोख़ी की अनुभूति करते हैं — पर दूसरे रंगों की संगति में। वस्तुत: यही कहानी की खरी कला है जो उसे करुण रस वाले नाटक की तीक्ष्णता और चुभन के स्थान पर वीर रस की कविता का विस्तार और प्रवाह प्रदान करता है। बेदी का कथा-साहित्य इसीलिए 'शौर्य' के निकट है, और 'करुणा' से एक अन्तर पर स्थित है।

बेदी जीवन की विडम्बनापूर्ण और भयावह स्थितियों का गम्भीर अध्ययन करते हैं, पर उनके वर्णन में कठोरता और उद्धतता को स्थान नहीं देते। उन्हें न जीवन का बीभत्स मुखड़ा दिखाना अभीष्ट है और न मानवीयता के फटे घावों को बेपरदा करना। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वह जीवन के केवल आलोकमय पक्षों को प्रतिबिम्बित करते हैं। बेदी सहज-सरल आशावादिता के कभी शिकार नहीं हुए। वह जीवन की करुणामयी गहरी अनुभूति रखते हैं, पर एक सच्चे कलाकार की भाँति उनमें इतनी क्षमता है कि वह आशावाद, निराशावाद और कठोरता से ऊपर उठकर, एक स्थिर दृष्टि से, जीवन के कारुणिक और भयावह अनुभव को, आँखों में आँखें डालकर देख सकें। हर बड़े कलाकार की भाँति बेदी की कल्पना-शक्ति जीवन के सच को 'कला के सच' (Poetic truth) में बदल देती है, तथा यह सच जीवन की वास्तविकता से अपनी समानता स्थापित करते हुए कुछ नये अर्थपूर्ण पक्ष उत्पन्न कर लेता है। इसीलिए अज़ीज़ अहमद ने कहा है कि बेदी का यथार्थ एवं वास्तविकता का चित्रण कोरा नहीं होता, उसमें रोमानियत और ऊर्वर कल्पना का समावेश

रहता है।

स्पष्ट है कि अज़ीज़ अहमद ने 'रोमानियत' शब्द को इसके विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया है, अन्यथा बेदी के यहाँ नवयुवकों जैसी रोमानी अभिलाषाओं की द्योतक कहानियाँ नहीं हैं। बेदी की रोमानियत वास्तविकता के इन छुपे हुए पक्षों की तलाश करती है, जिनका बुद्धिसंगत परीक्षण केवल सर्जनशील कल्पना से संभव है। बेदी अपनी दो आँखों से जो कुछ देखते हैं, उस पर सन्तोष नहीं करते। ऐसा सन्तोष पत्रकारिता और जड़ता का मार्ग दिखाता है।

बेदी की तीसरी आँख, जो कि उनकी 'कल्पना' है, दो आँखों द्वारा किये गये गहन अध्ययन को यथावत् रखते हुए बुद्धि-संगत परीक्षण का नया तत्त्व इसमें शामिल करती है। उदाहरण-स्वरूप अपनी कहानी 'ग्रहन' में वह केवल दुःखी नारी को नहीं देखते, अपितु दुःखी जीवन से छुटकारा पाने की उसकी तीव्र अभिलाषा को भी देखते हैं। यह अभिलाषा पूरी नहीं होती और होली एक और ही मुसीबत में क़ैद हो जाती है। पर यह अभिलाषा, जो मायके की याद के रूप में होली में उभरती है, पूरी कहानी को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करती है और यह अर्थवत्ता इस कहानी को नारी-विपत्ति की कहानी की भावुकता-पूर्ण संकीर्ण परिधि से बाहर निकालकर उसे मानवीय अस्तित्व की कष्टप्रद खींचातानी की कहानी बना देती है। स्पष्ट है कि इस अभिलाषा का गम्भीर निरीक्षण केवल उन आँखों से सम्भव नहीं जो बाह्य यथार्थपरक घटनाओं पर दृष्टि रखती हैं। इसके बुद्धिसंगत निरीक्षण के लिए कल्पना की आँख की आवश्यकता रहती है।

जीवन की बीभत्स-पूर्ण घटनाओं के सामने भी बेदी भावुक वेदना अथवा कठोर भावना के शिकार नहीं होते, क्योंकि उनकी रोमानियत एक ऐसे आदर्शवाद को जन्म देती है जो ऊपर से ओढ़ा हुआ नहीं, अपितु घटनाओं और सच्चाइयों की सख़्त ज़मीन से कोंपल की तरह फूटता है। बेदी इसी आदर्शवाद को उस झूठ के नाम से स्मरण करते हैं जिसे कहानी के सच के साथ न मिलाया जाए तो कहानी का सच जीवन के सच की तरह कटु ही नहीं अपितु इस रूप में विनाशक हो जाए कि पूरे समाज में अराजकता फैल जाए। अपनी आत्मपरक कहानी 'हमारे हाथ क़लम हुए' में वह कहते हैं :

> "सच सुनने की ताब किसमें है बाप रोज़ारियो ! नहीं, मैं सच न बोलूँगा या ऐसा सच बोलूँगा जो आपके सच से ऊँचा हो, अर्थात् उसमें झूठ का सुन्दर-सा सम्मिश्रण हो। ऐसा न करूँगा तो समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। लोग मुझे मार देंगे और मैं मरना नहीं चाहता। मुझे जीवन से बहुत घटिया-सी मुहब्बत है।"

बेदी के कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने जीवन का अन्धेरा पक्ष देखा है जिसके बाद आदमी में जीने का साहस नहीं रहता। यह सब होने पर भी बेदी जीवन से प्रेम करते हैं और यह प्रेम उत्कृष्ट आध्यात्मिक मान्यताओं के कारण नहीं, क्योंकि आध्यात्मिक मान्यताएँ तो जीवन के अस्तित्व और सुदृढ़ता — इन दोनों के अभाव का ही पाठ पढाती

हैं। इसलिए उन्हें जीवन से जो भी प्रेम है, वह अस्तित्व की शक्ति के कारण है जो उन्हें जिये जाने पर विवश करती है। बेदी अपनी कहानियों के द्वारा यह देखना चाहते हैं कि अस्तित्व की शक्ति इस संसार में जीवन को यथावत् रखने के लिए क्या-क्या यत्न करती है। क्या मानव की नैसर्गिक इच्छाओं में कोई स्वीकारात्मक पक्ष तलाश किया जा सकता है? क्या सामाजिक और चारित्रिक नियमों के पीछे जीवन के स्वीकारात्मक नियम क्रियाशील हैं? चुनाँचे वह ऐसी कहानियाँ लिखते हैं जिनके द्वारा सामाजिक और आचार-सम्बंधी तत्त्वों को जीवन की कसौटी पर परखा जाए। परखने का यह काम वह अपने 'कलाकार' की कल्पना के द्वारा करते हैं। चुनाँचे इनकी कहानियाँ जीवन में प्रकट होनेवाली घटनाओं की रिपोर्टिंग नहीं होतीं, बल्कि वह जीवन की व्याख्या भी होती हैं और जीवन को नये अर्थ भी देती हैं। बेदी जीवन के बिखराव को बिखराव के रूप में उपस्थित नहीं करते, अपितु वह अपनी कहानियों के लिए ऐसी घटनाओं का चुनाव करते हैं जिनसे जीवन को समझने की एक नयी दिशा एवं दृष्टि प्राप्त होती है।

□

बेदी की कहानियाँ

बेदी के पहले कहानी-संग्रह 'दाना-ओ-दाम' की पहली कहानी 'भोला' है जो आज भी बेदी की सबसे प्रसिद्ध और उत्तम कहानियों में गिनी जाती है।

यह एक बच्चे की कहानी है जिसे सब प्यार से 'भोला' कहते हैं। भोला अपनी विधवा माँ और बूढ़े दादा के साथ गाँव में रहता है। वह इस छोटे-से निर्धन परिवार की आँखों का तारा है। माँ के वैधव्य के उजाड़ में वह एक सदाबहार फूल है। दादा उसे कहानियाँ सुनाता है और जब वात्सल्य के गहन क्षणों में उसके सुर्ख़ और सफ़ेद गालों को चूमता है तो दादा की लम्बी सफ़ेद दाढ़ी के बाल भोला की आँखों में घुस जाते हैं और भोला छींकने लगता हे। हर बच्चे के समान भोला कहानियों में रुचि रखता है और एक दिन वह दिन के समय मचल जाता है कि दादा उसे कहानी सुनाएँ। दादा उसे समझाता है कि बेटा ! दिन को कहानियाँ सुनाने से मुसाफ़िर रास्ता भूल जाते हैं। भला भोला यह बात माननेवाला था ? रूठकर कहने लगा कि मैं दादाजी का भोला नहीं बनता। दादा ने उसे गोदी में लिया और कहानी सुनाने लगा, लेकिन प्यार से डाँटते हुए कहा कि अब कोई मुसाफ़िर रास्ता खो बैठे तो उसका ज़िम्मेवार भोला होगा। फिर दादा ने सात शहज़ादों और सात शहज़ादियों की एक लम्बी कहानी उसे सुनायी। भोला को यह कहानी बहुत पसन्द थी। भोला सदा ऐसी कहानी को पसन्द करता जिसके अन्त में शहज़ादा और शहज़ादी की शादी हो जाए। दादा ने शादी का ज़िक्र बड़े जोश के साथ किया, लेकिन उस दिन भोला के चेहरे पर खुशी की कोई निशानी न दिखी, बल्कि वह चिन्तित-सा मुँह बनाये काँपता रहा।

कारण यह था कि उस दिन भोला की माँ ने बताया था कि भोला के मामा आने वाले हैं और भोला के लिए तरह-तरह के खिलौने लाएँगें। शाम के समय जब दादा खेत से लौटा तो उसने देखा कि भोला दालान में कूदता-फाँदता फिर रहा है और लकड़ी के एक डंडे को घोड़ा बनाकर उसे भगा रहा है — "चल मामा के देस रे घोड़े, मामाजी के देस।" शाम होते ही भोला द्वार पर जा बैठा कि मामा आएँ तो मामा की शक्ल देखकर पहले-पहल दौड़कर मामा के आने की ख़बर घर में सुनाए। दिये जल गये, लेकिन मामा नहीं आये।

माँ भी परेशान कि भय्या अब तक क्यों नहीं आए। शायद कोई आवश्यक काम आ पड़ा हो। भोला पूछने लगा मामा क्यों नहीं आए। माँ ने गोद में लेकर कहा – शायद सुबह आ जाएँ।

रात गये दादाजी ने कहा बत्ती जलती रहने दो। गाँव में मेले के कारण चोर-चिकार आये हैं जो कि नन्हें-नन्हें बच्चों को उठाकर ले जाते हैं। पड़ोस के एक गाँव में दो-एक ऐसी घटनाएँ हुई थीं, और इसीलिए दादा ने भोले को अपने पास लिटा लिया था। दादा ने देखा कि भोला अभी तक जाग रहा है। उसके बाद दादा की आँख लग गयी। थोड़ी देर के बाद जब दादा की आँख खुली तो देखा कि दीवार पर बत्ती नहीं है। हाथ पसारा तो देखा कि भोला भी बिस्तर पर न था। अन्धों की तरह दर-ओ-दीवार से टकराते, ठोकरें खाते सभी चारपाइयों पर देखा, भोला की माँ को जगाया, घर का कोना-कोना छान मारा, भोला कहीं न था।

घर में शोर मच गया। माया ने अपना सुहाग लुटने पर भी इतने बाल न नोचे थे, जितने कि इस समय नोचे। वह बेहोश पड़ी थी। उसके हाथ अन्दर की ओर मुड़ गये थे। नसें खिची हुई और आँखें पथरायी हुई थीं, और पड़ोस की औरतें उसकी नाक बन्द करके एक चम्मच से उसके दाँत खोलने की कोशिश कर रही थीं। इस हालत को देखकर दादा एक क्षण के लिए भोला को भी भूल गये। घर के जब दो आदमी एक-साथ देखते-देखते चले जाएँ तो उस समय दिल की क्या हालत होती है। ऐसा लगा कि दादा भी चकरा कर गिर पड़ेंगे कि माया होश में आ गयी। दादा माया को समझाने लगे – हौसला करो, बच्चों को उठाकर ले जाते हैं, मगर आख़िर में मिल भी जाते हैं।

उस समय आधी रात इधर थी, आधी रात उधर, जब पड़ोस का एक आदमी इस घटना की सूचना थाने में पहुँचाने के लिए – जो गाँव से दस कोस दूर शहर में था – रवाना हुआ।

अचानक दरवाज़ा खुला और सबने भोला के मामा को घर में दाख़िल होते देखा। उसकी गोद में भोला था। सिर पर मिठाई की टोकरियाँ और एक हाथ में बत्ती थी। माया ने भाई को न पानी पूछा न क्षेम-कुशल, उसकी गोद से भोला को छीन कर उसे चूमने लगी।

मामा ने कहा कि मुझे किसी काम से देर हो गयी थी। देर से रवाना होने पर रात के अँधेरे में रास्ता भूल गया। एक ओर रोशनी दिखायी दी। देखा कि भोला बत्ती पकड़े काँटों में उलझा हुआ है। मैं हैरान रह गया। उसके इस समय वहाँ होने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि बाबा जी ने आज दोपहर के समय कहानी सुनायी थी और कहा था कि दिन के समय कहानी सुनाने से मुसाफ़िर रास्ता भूल जाते हैं। तुम देर तक न आए तो मैंने यही समझा कि तुम रास्ता भूल गए होगे, और बाबा ने कहा था कि अगर कोई मुसाफ़िर रास्ता भूल गया तो तुम ज़िम्मेवार होगे ना !

इस कहानी में एक शिक्षाप्रद कहानी की 'सादगी' और परियों की कहानी का 'विस्मय'

है, पर उसके वर्णन में यथार्थ, और उसके एक-एक अंग की प्रस्तुति का, अर्थात् नयी कथा-शैली और तकनीक का, पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। मिथकीय संकेतों और पात्रों को इस छोटी-सी सीधी-सादी कहानी में बेदी ने इस तरह बन्द किया है मानों समुन्दर को मिट्टी के सकोरे में। बच्चा भोलेपन का, दादा समझदारी का, माँ त्यागवृत्ति का प्रतीक है। भोले के गुम होने और पाये जाने में पुराने मिथक के अनुसार फूल या ख़ज़ाने के गुम हो जाने, तलाशने और पाये जाने की 'थीम' है। कहानी में अनेक 'आरकीटाइप' (परम्परागत तत्त्व) हैं, परन्तु इन्हें इतने यथार्थ और सच्चे रूप में प्रस्तुत किया गया है कि वे तत्त्व परिचित से मालूम पड़ते हैं। इस कहानी में बेदी की आरम्भिक कहानियों की सभी विशेषताएँ दिखायी देती हैं — ग्रामीण वातावरण, सीधे-सादे जीवन की ख़ुशियाँ, शोक तथा भय और मानव की मौलिक भावनाओं के ताने-बाने से बुना हुआ वह वातावरण जो एक परिवार अपनी सुरक्षा के लिए स्थापित करता है और उसका आग्रह अन्धेरे के परदे के पीछे छिपा हुआ वह संसार है जो अनबूझा और अनदेखा है, और जिसमें बच्चों को उठाकर ले जाने की भीति और आशंका पलती है। कहानी 'कहानी' होती हुई भी एक कविता होने का आभास देती है, क्योंकि साधारण-से-साधारण सूत्रों और विवरणों में मिथकीय रूपकों का सौन्दर्य सिमट आया है।

बेदी की कहानियों में बच्चा, बूढ़ा और औरत तीनों का बहुत महत्त्व है, और ये तीनों ही आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की गिरफ़्त में हैं,और अत्यन्त पीड़ित हैं। बेदी ने अपनी कहानी 'तुलादान' में एक ऐसे बच्चे की कहानी प्रस्तुत की है जो ग़रीब धोबी के घर पैदा होता है, पर उसकी आकृति, रंग-ढंग सब बाबुओं जैसे हैं। इसलिए उसे 'बाबू' नाम से पुकारा जाता है। कहानी का आरम्भ इस तरह होता है — "धोबी के घर कहीं गोरा-चिट्टा छोकरा पैदा हो जाए तो उसका नाम 'बाबू' रख देते हैं।" साधुराम के बाबू ने भी माँ को तुच्छ समझते हुए 'ए यू' ("O You"), और बाप को 'चल बे' कहना न जाने कहाँ से सीख लिया था। गर्वीली आवाज़, फूँक-फूँक कर कदम रखना, जूतों-समेत चौके में चले जाना, दूध के साथ मलाई न खाना — सभी विशेषताएँ बाबुओं वाली ही तो थीं।

स्पष्ट है कि बाबू की आँख से सामाजिक ऊँच-नीच और छूतछात छिपी नहीं रह सकती। वह जब सुखनन्दन और दूसरे अमीरज़ादों के साथ खेलता तो किसी को मालूम न होता कि यह इस माला का मनका नहीं है, लेकिन विवाह और त्योहार के अवसर पर साथी-संगियों के बीच ऊँच-नीच और छूतछात का अन्तर मालूम हो जाता। बाबू इस अन्तर को कहाँ स्वीकार करने वाला था, मानो यह उसके ख़मीर में ही नहीं था कि वह अपनी औकात समझे। उसके मित्र सुखनन्दन के जन्म-दिन पर तुलादान दिया जाता था। सुखनन्दन का पिता गाँव के और दूर तथा पास के सब लोगों को एक बड़ी दावत देता है। सारे नीच जाति के लोग ऊपर के काम-काज में हाथ बटाने के लिए बुलाये जाते हैं। सुखनन्दन को तराजू में बिठा कर गेहूँ से तोला जाता है, और यह गेहूँ नीची जाति के लोगों में बाँटा जाता

है, जिनकी पंक्ति में बाबू की माँ भी बैठी हुई है। बाबू अपमान महसूस करता है और माँ को डाँटता है — 'ए यू', और फिर घृणा से अपनी माँ की ओर देखता है, मानो कह रहा हो, "यह तेरी फटी हुई असन्तुष्ट आँखें गेहूँ से नहीं, क़ब्र की मिट्टी से भरी जा सकेंगी।" जब सुखनन्दन तुल चुकता है तो सुखनन्दन उससे कहता है, "बाबू जाओ, अभी मैं नहीं आ सकता", और फिर, अभिमान-सूचक ढंग से अपने सुनहरी कढ़े हुए कोट और बाबू की ओर देखता हुआ बोला, "कल आना भाई, देखते नहीं हो, आज मुझे फ़ुरसत नहीं है, जाओ।" फिर बाबू की माँ की चीख़ती-सी आवाज़ आयी, "बाबू ! तेरा सत्यानास, तौन (ताऊन)[1] मारे, घुस जाए तेरे पेट में माता काली[2], . . . आता क्यों नहीं, . . . दो सौ कपड़े पड़े हैं।"

बाबू को यह महसूस हुआ कि न केवल सुखनन्दन ने उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाई है — और वह इसके साथ कभी नहीं खेलेगा, बल्कि उसकी माँ ने भी, जिसके पेट से वह व्यर्थ ही पैदा हुआ था। वही औरत जिससे उसे संसार में सर्वाधिक प्यार पाने की आशा है, वह उससे ऐसा व्यवहार करती है। काश ! मैं इस संसार में पैदा ही न होता !

आप देखेंगे कि कहानी धीरे धीरे बाबू में एक शोक में डूबे हुए पात्र की मनोदशा पैदा कर रही है, एक ऐसा शोक-ग्रस्त पात्र जिसके पैदा होने से सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल पैदा हो जाती है। लेकिन बाबू बच्चा है, इसलिए शोकग्रस्त पात्र की स्वाभाविक शोख़ी ऊँची होने से पहले ही उसे राख का ढेर बना देती है। बाबू स्वयं अपने आप में और ऊँची जाति वाले बच्चों में कोई अन्तर नहीं करता, पर यह अन्तर उसे याद दिलाया जाता है, और उसका मन इस अन्तर को मानने से इनकार करता है। बाबू चूँकि दुःखान्त नाटक का नायक नहीं, बल्कि एक बच्चा है इसलिए उसमें विद्रोह किसी आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता। उसका आचरण उसके अनादर को सहन कर लेने तक सीमित है, और वह मरता भी है — शोक-ग्रस्त नायक की नहीं — एक बच्चे की मौत। पर मरते-मरते भी अपनी विद्रोही प्रकृति का प्रमाण दे जाता है। उस पर चेचक का हमला होता है और जब तेज़ बुख़ार में भुन रहा होता है तो सुखनन्दन की माँ उसके यहाँ कपड़े लेने आती है। ज्योतिषी के कहने पर बाबू की माँ इसे तराज़ू पर रखती है और दूसरे पलड़े में गेहूँ तथा दूसरे अनाज डालती है। यह सदक़ा[3] बाबू का तुलादान है। बाबू ने अपने आप को तुलता हुआ देखा तो एक विशेष प्रकार की मानसिक शान्ति की अनुभूति की। उसने द्वार पर बैठी हुई सुखनन्दन की माँ को देखा। चार दिन के बाद पहली बार कुछ कहने को ज़ुबान खोली और इतना कहा, "अम्माँ, कुछ गेहूँ और माश की दाल दे दो सुखी की माँ को, कब से बैठी है बेचारी" — कुछ देर बाद बाबू फिर बोला, "अम्माँ ! अम्माँ ! आज मेरा जन्मदिन है।" साधुराम फूट-फूट कर रोने लगा और बोला, "हाँ बाबू बेटा, आज

१. प्लेग २. शीतला माता, चेचक ३. मांगलिक दान

जन्मदिन है तेरा, बाबू . . . बेटा !" बाबू ने अपने जलते हुए शरीर और आत्मा से सारे कपड़े उतार दिये, मानों नंगा होकर सुखी हो गया और धीरे-धीरे आँखें बन्द कर लीं।

बाबू के जन्म से सामाजिक व्यवस्था में कोई दराड़ नहीं पड़ी, पर उसका जन्म इस व्यवस्था के प्रति विरोधों को उजागर कर गया, और उसकी मृत्यु ने बता दिया कि यद्यपि उसमें इन विरोधों को कार्यान्वित करने की शक्ति नहीं, पर वह मरकर यह प्रमाणित करता गया कि बच्चे तो सभी एक-जैसे होते हैं और प्रकृति मानव को स्वतन्त्र उत्पन्न करती है, पर स्वयं मानव द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था हर बच्चे को स्वतन्त्र और समानता का जीवन जीने की आज्ञा नहीं देती। इसलिए जीवन नहीं, मृत्यु ही उसके लिए अच्छी है। ऐसे भड़कते हुए शोलों का न पैदा होना ही बेहतर है, पर प्रकृति ऐसे शोले पैदा करती है और उनका जन्म और मृत्यु, दोनों, युगीन व्यवस्था के लिए चुनौती प्रमाणित होते हैं। कहानी के अन्तराल में यही शोकजनक स्थिति छिपी हुई है, और यही तथ्य कहानी में एक गहरा दर्द भर देता है। कहानी में विद्यमान भाव-प्रवणता को यह शोक-तत्त्व सन्तुलित करता है, और बाबू का शोख़ बचपन इस बात का संकेत करता है कि कहानी को दुःखान्त न समझा जाए। ऐसे ही परस्पर-विरोधी कलात्मक प्रयोग कहानी को बहुपक्षीय बनाते हैं और उसे नितान्त विद्रोह या दुःखान्त या व्यंग्य और भावुकता के उन ख़तरों से सुरक्षित रखते हैं जिनका सामना ऊँच-नीच और छूतछात पर लिखनेवाले कलाकारों को प्रायः करना पड़ता है।

'छोकरी की लूट' में बेदी ने बच्चे की अबोधता की आँखों के माध्यम से भारत की सभ्यता के द्योतक जीवन को प्रतिबिम्बित किया है। कहानी में ऐसे जीवन का केन्द्र 'घर का आँगन' है, जहाँ रतजगे होते हैं, कन्याएँ विवाह-गीत गाती हुई जवान होती हैं, ब्याह दी जाती हैं और उनका स्थान दूसरी कन्याएँ ले लेती हैं। शादी-ब्याह के उत्सव, तैयारियाँ, पकवान, रीति-रिवाज, दुल्हन की विदाई, बाबुल के गीत, घर वालों का रोना-धोना — यह सब परसादीराम देखता है, कुछ समझ पाता है, कुछ समझ नहीं पाता, अच्छा लगता है और अच्छा नहीं भी लगता, क्योंकि अपनी बहिन रतनी — परसादीराम की ताई की लड़की — के साथ उसे खेलने और सरदियों की रातों में उसकी गरम देह के साथ चिमट कर सो रहने की आदत थी, और अब रतनी की शादी हो गयी और वह घर में अकेला रह गया। पर साल भर बाद जब रतनी एक नन्हा-मुन्ना बच्चा लेकर आती है तो परसादीराम ख़ुश हो जाता है कि उसे खेलने के लिए रतनी से भी अच्छी चीज़ मिल गयी, और वह सोचता है कि अन्ततः छोकरी की लूट इतनी बुरी चीज़ भी नहीं है। हमारे उत्सवों में प्रसन्नता और शोक के जो मिले-जुले धारे होते हैं कि विवाह की ख़ुशी और लड़की की विदाई पर रोना-धोना — इनका वर्णन करने का इससे बढ़िया तरीका नहीं है कि इन्हें बच्चे की आँख से देखा जाए जिसे कुछ समझ नहीं आता है। एक ही बात अच्छी भी लगती है और मूर्खतापूर्ण भी, क्योंकि रस्मोरिवाज में बहुत-से तत्त्व आपस में मिले-जुले रहते हैं।

बेदी ने जिस तरह बच्चों पर कहानियाँ लिखीं उसी तरह बूढ़ों पर भी लिखीं। 'गुलामी', 'वह बुड्ढा', 'मुक्तिबोध', 'बाप बिकाऊ है', 'सिर्फ़ एक सिगरेट' ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें बूढ़ों की मानसिकता का गहन अध्ययन किया गया है।

'ग़ुलामी' एक ऐसे बूढ़े की कहानी है जो नौकरी से मुक्त हो जाने के बाद घर में बैठा-बैठा उकता जाता है, और समय किसी तरह काटे नहीं कटता। संयोग से एक दिन वह उसी पोस्ट ऑफ़िस में किसी काम से जाता है, जहाँ वह कार्यरत था, और फिर पोस्ट ऑफ़िस में जाना, और छोटे-मोटे काम करते रहना उसकी दिनचर्या बन जाती है। पहली तारीख़ को प्रातः जब वह पेन्शन लेने गया, तो पहले की ही तरह नोटिस-बोर्ड पढ़ने लगा। डाकख़ाना को शहर के एक अधिक आबादी वाले इलाक़े में एक 'एक्स्ट्रा डिपार्टमेन्टल डाकख़ाना' की आवश्यकता थी और उसके लिए पच्चीस रुपए – किराया-मकान और स्टेशनरी समेत – मिलने थे। पोल्हूराम ने यह नौकरी कर ली। अब वह प्रातः आठ बजे ही घर से निकल जाता था और रात को देर से घर आता था। काम की अधिकता से उसका दमा जो कि मामूली हालत में था भयंकर रूप धारण कर गया। कभी-कभी मनीआर्डर करते-करते उसे दौरा पड़ता तो पैसे, बीमे, रसीदें सब मेज़ पर बिखर जातीं। उसका चेहरा लाल हो जाता। आँखे पथरा जातीं, और मुँह में से कफ़ के छींटे उड़कर खिड़की में से दाख़िल होनेवाली रोशनी की किरण में एक डरावने इन्द्र-धनुष का रंग भरते। पब्लिक के आदमी क़ाउंटर पर बिखरे हुए पैसों को उसके लिए समेटते, और बड़ी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से उस बूढ़े की ओर देखते, और कहते – "डाकख़ाना क्यों नहीं इस बूढ़े को पेन्शन दे देता।" मगर पोल्हूराम काम का गुलाम था और उसके जीवन में काम के अतिरिक्त किसी और तरह के हर्षोल्लास और सौन्दर्यानुभूति के लिए कोई स्थान नहीं था।

'वह बुड्ढा' नामक कहानी में बेदी ने एक ऐसे वृद्ध का चरित्र प्रस्तुत किया है जो जीवन के सौन्दर्य का पारखी और उसका प्रशंसक है। वह एक सुन्दर लड़की को प्यारभरी नज़रों से देखता है, पर नारी के सौन्दर्य की अनुभूति उसके लिए इतनी अधिक विस्मयकारी होती है कि उसकी सौन्दर्य-प्रियता में काम-वासना का कोई गुमान नहीं होता, पर लड़की को यह बात समझ में नहीं आती। वह उसे कूढ़-मग़ज बुड्ढा समझती है। बुड्ढा लड़की को भावी जननी के रूप में देखता है – एक ऐसी लड़की जो उपजाऊ भूमि के रूप में सन्तानों को जन्म दे। इस घटना के कुछ समय बाद लड़की का विवाह हो जाता है और वह अपने श्वसुर के पाँव छूती है तो उसी बूढ़े की आवाज़ आती है जो दुल्हन के सिर पर हाथ फेर कर कहता है, "सो तुम – आगई बेटी।" नज़र जब ज़िन्दगी की बहारों की अदाओं को परखनेवाली हो तो वह लड़कों के लिए बहू पसन्द करने में सोने-चाँदी के आभूषण और दहेज की रक़म पर नहीं पड़ती, अपितु लड़की में एक दिव्य नारी के चित्ताकर्षक सौन्दर्य की पारखी बनती है।

'सिर्फ़ एक सिगरेट' कहानी का केन्द्रीय पात्र सन्तराम है। सन्तराम बूढ़ा हो रहा है

और अपनी पत्नी और बच्चों के साथ उसके सम्बन्ध में अत्यन्त संवेदना-जनक परिवर्तन आ रहे है। बेदी लिखते हैं :

> "सन्तराम पर वह समय चला आया था जब कि यौवन एक बार फिर प्रकट हो आता है। आदमी कई बार बदनामी से बाल-बाल बचता है। पहले की-सी शक्ति के साथ बुद्धि-कौशल और अनुभव भी सम्मिलित हो जाते हैं और एक परिपक्वता तथा उपलब्धि पा जाने से व्यक्ति स्वयं ही अपने-आप में सड़ांध पैदा कर लेता है, और थोड़े पानी वाले पोखर की कीच में भैंस की तरह लोटने लगता है। अथवा शायद इसका कारण भी वह घाटा था जो सन्तराम ने अपने व्यापार में खाया था और आर्थिक रूप में अपने-आप को असुरक्षित पाने की अनुभूति प्रेम-भाव के असुरक्षित होने की अनुभूति में बदल गयी थी।"

सन्तराम एक बड़ी एडवरटाइज़िंग एजेन्सी का मालिक है और व्यापार में हानि हो जाने के कारण वह असुरक्षित, चिड़चिड़ा और रूखा बन गया है। वह अपनी पत्नी को धोबिन कहता है क्योंकि उसे कपड़े धोने की सनक है। दूसरी सनक उसे रात को अपने हाथ-पाँव दबवाने की है। दबाने की इस मुसीबत से सन्तराम को तो क्या उसके बच्चों तक को चिढ़ थी। फिर मुसीबत यह थी कि धोबिन को पता ही न चलता था कि उसे दर्द कहाँ हो रहा है। जहाँ हाथ रखो, दर्द उससे हमेशा ज़रा परे होता था। यों, जगह ढुँढवाते-ढुँढवाते वह सारा शरीर दबवा लेती थी। कोई कहे कि यह उसकी चालाकी थी, तो ऐसी बात नहीं। उसे सचमुच पता न चलता, और अन्ततः यह फैसला होता कि सारा शरीर दुख रहा है। साथ के कमरे में लाडो — सन्तराम की विवाहिता बेटी — जो अपने ससुराल से आयी थी, कुछ ऐसी निश्चिन्तता में सो रही थी मानो उसका कोई पति ही न हो। उसके साथ उसका बच्चा सो रहा था। छोटे दो बच्चे — लड़का और लड़की — अपने मामा के यहाँ गुड़गाँव गये थे। सन्तराम का बड़ा बेटा पाल यहीं था, जिसके ख़र्राटे सुनायी दे रहे थे — कैसे देखते-देखते वह बड़ा हो गया था, और सन्तराम के शासनाधिकार से निकल गया था। पहले सन्तराम उसे उसकी ग़लती पर डाँटता था तो वह विभिन्न तरीकों से विरोध करता था — माँ से लड़ने लगता, चाय की प्याली को उठाकर खिड़की से फेंक देता, पर अब वह पिता की डाँट के बाद चुप रहता था। सन्तराम चाहता था कि वह उसकी बात का उत्तर दे। और जब वह कहते उत्तर दे और यदि वह दे देता तो सन्तराम और भी आग-बबूला हो उठता।

सन्तराम को एक रात सिगरेट की तलब हुई। सिगरेट उसके पास थी नहीं। उसने अपने बेटे पाल के पैकेट में से, जिसमें केवल दो सिगरेट थीं, एक पी लिया, और चूँकि वह पाल से डरता था, इसलिए उसने पाल की चुप्पी का यह मतलब निकाला कि वह सन्तराम के सिगरेट लेने पर नाराज़ है — हालाँकि चुप्पी का कारण माँ से झगड़ा था। अब आप देखिए कि बेदी मानवीय दुर्बलताओं पर आधारित ग़लतफ़हमियों से कैसी कोमल-सूक्ष्म

मनःस्थिति पैदा करते हैं। सन्तराम पाल के लिए 'स्टेट एक्सप्रेस' का एक कार्टन मँगवाता है। इधर पाल पिता के लिए 'रशियन सोब्राइन' का एक पैकेट लाता है। मगर सन्तराम ने, जो बेटे से डरता भी था और उसे चाहता भी था, पाल की इस हरकत को अपना अनादर समझा। उसने पूरा पैकेट पाल के मुँह पर खींच मारा और क्रोध में न कहने की बातें कह गया। एक सिगरेट क्या पी लिया है इसका, इसके बदले पूरा पैकेट लाकर दे रहा है। तब पाल कहता है कि मुझे तो मालूम ही नहीं। इससे पहले कि गुस्से से काँपता हुआ सन्तराम धड़ाम से नीचे गिर जाता पाल उसे थाम लेता है और उसके गले लगकर फूट-फूट कर रोता है – "माफ़ कर दो, मुझे माफ़ कर दो, पापा !"

दूसरे दिन वह प्रातः चार बजे उठता है और अपने बच्चों के कमरे में चला जाता है। 'स्टेट एक्सप्रेस' का कार्टन वह पाल के सिरहाने रख देता है। सन्तराम का जी चाहा कि वह आगे बढ़कर पाल का मुँह चूम ले, लेकिन कहते हैं कि सोते में बच्चे का मुँह नहीं चूमते। उसने फिर बच्चों की ओर देखा और फिर प्रार्थना के लिए पूजा के कमरे की ओर चल दिया।

कहानी में कैसे तेज़ भाव-प्रवण तूफ़ान उठते हैं, किन्तु इन तूफ़ानों का कारण बड़ी घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि जीवन की दैनिक चर्या के मामूली से कारण हैं। इन तूफ़ानों में घिरे हुए आदमी की मानसिक परेशानियों को बेदी अत्यन्त मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। साथ ही, असंख्य मानसिक और चारित्रिक समस्याएँ उलझी हुई होती हैं और बेदी की दृष्टि दोनों पक्षों पर पड़ती है। सन्तराम की पत्नी का चरित्र एक मूर्ख, नर्वस और सबको दबा कर रखनेवाली नारी के रूप में हमारे सामने आता है, पर चित्र का दूसरा रूप उस समय सामने आता है जब वह कहती है :

> "पहले अनाथ भाई-बहनों के सम्बन्ध में मुझे डाँटते, लड़ते, झगड़ते रहे, फिर दोस्त मुझ पर लाद दिये। एक हाथ से बच्चा खिला रही हूँ और दूसरे से रोटियाँ पका रही हूँ इन चरकटों के लिए। अब कसाई सन्तान के हवाले कर दिया। इतनी छूट दे दी पैसे-कपड़े की, जिससे वह नालायक़ निकल आये सब के सब और अब बेटे का यह साहस कि वह तुम्हारे होते मुझे आँखें दिखाये।"

'सिर्फ़ एक सिगरेट' कहानी वृद्धावस्था की मानसिकता का, मानवीय सम्बन्धों के प्रकाश में, अतीव करुणापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करती है। वह समय मनुष्य पर बड़ा कठिन होता है जब उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं पर इच्छाएँ जाग उठती हैं, जब वे लोग पराये हो जाते हैं, जिनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है, जब पत्नी में रुचि कम हो जाती है और नवयुवती सेक्रेटरी के लिए वासना जागृत हो जाती है, जब सब कुछ कमाते हुए भी यह भावना तीव्र हो जाती है कि जीवन में हमें कुछ नहीं मिला।

बेदी जीवन के इस अन्धकारपूर्ण काल की नब्ज़ खूब पहचानते हैं और समय की धड़कन को, आशा और निराशा के धुँधलकों की, परखने में बड़े कुशल हैं।

बेदी की आरम्भिक कहानियों में एक महत्त्वपूर्ण कहानी 'गरम कोट' है। यह भी निम्न-मध्यम वर्ग के जीवन की कहानी है। जीवन को देखने का बेदी का दृष्टिकोण इतना अधिक मानवीय है कि वह कभी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि निर्धनता जीवन को इतना अधिक कुरूप और क्रूर बना देती है कि उसमें रोमांस की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। यह एक मामूली क्लर्क की कहानी है जिसे पत्नी ओर बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिए बहुत-सी आवश्यकताएँ छोड़नी पड़ती हैं। पति अपनी पत्नी शम्मी को गीली लकड़ियों पर चूल्हा फूँकते और आँखों को धुएँ से लाल अंगारा होते देखता है तो सोचता है कि इस बार भी कम्बख़्त मंगलसिंह ने लकड़ियाँ गीली भेज दीं। उन गीली आँखों के लिए मंगलसिंह तो क्या, पूरी दुनिया के साथ वह जंग करने को तैयार है। इधर शम्मी लकड़ियाँ चटख़ाने के बाद आती है और पति के कन्धे पर सिर रखकर उसके फटे हुए गरम कोट में पतली-पतली उंगलियाँ डालकर कहती है, "अब तो यह बिल्कुल काम का नहीं रहा!" बस ऐसे ही दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं से बेदी एक ग़रीब क्लर्क के जीवन में रोमांस तलाश कर लेते हैं।

कहानी का मनोरंजक मोड़ वह है जब दस रुपए का एक नोट जिसे लेकर पति बाज़ार में बच्चों और पत्नी की मँगवाई हुई चीज़ें ख़रीदने जाता है और नोट एकाएक फटी जेब से ग़ायब हो जाता है। शोक और निराशा में डूबा वह रात को रेलवे लाइन के साथ-साथ चलता रहता है। इसी बीच एक मालगाड़ी और फिर शन्टिंग करता हुआ इंजन गुज़र जाता है। क्लर्क नदी के पुल की ओर चल देता है। चाँदनी रात में सरदी होने पर भी कॉलेज के मनचले नवयुवक नौका चला रहे थे। नौका चलाने वाला लड़कों को कह रहा था कि इस ऋतु में रावी का पानी घट जाने के कारण ज़्यादह कहीं नहीं होता। नोट गुम करके प्रकृति ने किस क्रूरता से क्लर्क की एक रंगीन, पर बहुत सस्ती, दुनिया बरबाद कर दी है। जी तो चाहता था कि वह भी डूबकर या रेल के नीचे आकर प्रकृति की एक कलाकृति तोड़-फोड़ कर रख दे। बेदी ने रेलवे लाइन और नदी में आत्महत्या की संभावनाओं का वर्णन मात्र बाहरी दृश्य दिखाने के माध्यम से किया है, और इस तरह क्लर्क की अँधेरी आशंकाओं को इतना असहनीय नहीं बनाया कि वह कहानी के हल्के-फुल्के आह्लादक वातावरण को विषैला बना दे। हम अनुभव करते हैं कि क्लर्क का जीवन धनाभाव के होने पर भी अपनी बीवी और बच्चों के साथ ख़ुशियों भरा है और इस तरह जिजीविषा मरणेच्छा पर हावी हो जाती है।

वस्तुतः, दस रुपए का नोट कहीं गिरा नहीं था, बल्कि जेब के सूराख़ के रास्ते कोट के अस्तर में गुम हो गया था। सरसराते काग़ज़ के इस टुकड़े को खिसका कर वह नोट को जेब में वापस लाता है और इस आशातीत देन के फिर मिल जाने पर प्रसन्न-चित्त घर लौटता है। बीवी और बच्चों के साथ बैठकर ख़रीदी जानेवाली चीज़ों की नये सिरे से सूची तैयार होती है, पर पत्नी सूची वाले काग़ज़ को फाड़ डालती है — "इतने क़िले मत बनाओ,

फिर नोट को नज़र लग जाएगी।" क्लर्क शम्मी को कहता है, "तुम ही जाकर चीज़ें ख़रीद लाओ", और शम्मी पड़ोसन के साथ बाज़ार जाती है। पिता बच्चों को सँभालता है जो उसके लिए मुश्किल काम है, क्योंकि बच्चे सँभालने की उसे आदत नहीं है और बच्चे गुलाब जामन की प्रतीक्षा में माँ के आने की राह देखते हैं। शम्मी आती है और उसके हाथ में गरम कोट के कपड़े का बंडल होता है। "मेरे गुलाब जामन" बच्चा कहता है, और माँ उसके मुँह पर चपत लगा कर उसे ख़ामोश कर देती है। ऐसा नहीं कि माँ को बच्चों से स्नेह नहीं, पर वह जानती है कि पिता की आवश्यकता बच्चों के चटख़ारे से अधि क है। पिता अपने लिए कुछ नहीं ख़रीदता तो पिता की आवश्यकताओं का ध्यान करके माँ अपनी और बच्चों की आवश्यकताओं को थोड़े समय के लिए स्थगित कर देती है। एक-दूसरे के लिए यह त्याग-भावना इस परिवार की खुशी के लिए एक पक्की गारन्टी है।

'मन की मन में' और 'क्वारेन्टाइन' दो ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें बेदी यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि जन-साधारण में भी सहानुभूति और दयाभाव के उदाहरण मिलते हैं जो प्रायः सन्तों और पैग़म्बरों के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के गुण होते हैं। इन दो कहानियों के पात्रों, माधो और भार्गव, को बेदी सन्त-रूप में नहीं, अपितु साधारण व्यक्तियों के रूप में ही, प्रस्तुत करते हैं। इतने अधिक साधारण लोगों के असाधारण होने का किसी को आभास ही नहीं होता। यहाँ तक कि उनकी त्याग-भावना और मानवीय सहानुभूति भी उन्हें असाधारण नहीं बनाती — अर्थात् बेदी साधारण व्यक्ति को सन्त बना कर प्रस्तुत नहीं करते, अपितु यह दिखाते हैं कि सन्त के सर्वश्रेष्ठ गुण भी एक साधारण व्यक्ति में हो सकते हैं। लेकिन चूँकि हम साधारण व्यक्ति और उसके साधारण कामों को बाहरी आँखों से देखने के अभ्यासी हैं, इसलिए समझते हैं कि भार्गव तो है ही मेहतर — अगर प्लेग के रोगियों की देखभाल तन लगाकर करता है तो यह तो उसका काम है। दूसरे लोग भला उसकी तरह गन्दगी में काम कैसे कर सकते हैं। इसलिए उसके काम में हमें कोई असाधारणता दिखायी नहीं देती। पर उसका काम इतना अधिक असाधारण होता है कि हम महसूस करते हैं कि भार्गव में एक सन्त की आत्मा छिपी हुई है। इतना होने पर भी हम भार्गव को न एक सन्त की भाँति देखते हैं, न उसे पूजते हैं। वह कहानी में एक मेहतर ही रहता है — एक साधारण आदमी जो अपने अन्दर एक असाधारण दिल रखता है, न तो समाज उसकी महत्ता पहचानता है और न उसे इस बात की चिन्ता होती है कि उसका आदर किया जाए। दूसरे शब्दों में कहें तो बेदी मामूली आदमी को हीरो बनाकर या उसकी महत्ता को बढ़ा कर उसे असाधारण नहीं बनाते, बल्कि उसके अन्दर झाँक कर, उसके आचरण के स्रोतों की खोज करके यह दिखाते हैं कि इन साधारण व्यक्तियों के असाधारण कार्यों के पीछे कितनी प्रबल आध्यात्मिक शक्तियाँ छिपी रहती हैं।

'मन की मन में' कहानी का माधो एक सीधा-सादा व्यक्ति है। घर के लोग उसे 'मिट्टी का माधो' समझते हैं तो समझा करें, पर वह तो एक समझदार आदमी है। उसकी पत्नी

किलकारनी भी समझदार औरत थी, पर माधो की समझ आम आदमी की समझ से अधिक थी। वह दूसरों के दु:ख-दर्द को समझता था, लेकिन किलकारनी दुनियादार औरत की तरह घरेलू और सीधी-सादी, तथा साधारण रीति-रिवाज वाली बातों ही को समझती थी। किलकारनी जीवन के प्रकाशित पक्ष को और माधो अँधेरे पक्ष को देखने के अभ्यासी थे। माधो का निराशावाद इतना अधिक सर्वज्ञात था कि जो कोई उसे बाज़ार में मिलता 'राम जी' कहने के स्थान पर कहता, "कहो भाई माधो, मन की मन में ही रही।" विनाश का प्रतिनिधि और निराशावाद का झंडा-बरदार माधो तुरन्त एक गहरा, ठण्डा साँस भरता और कहता, "हाँ भई, मन की मन में रही"।

गाँव में एक विधवा अम्बो रहती थी। अगर उसे समाज के भरोसे छोड़ दिया जाता तो बेचारी कभी की तबाह हो चुकी होती। माधो को उसकी सहायता करता देख लोग उस पर कई तरह के आरोप लगाते और अम्बो की शत्रुता में किलकारनी सबसे आगे थी। माधो के विचारों के विपरीत किलकारनी का विश्वास था कि आप खाया सो खाया, जो खिलाया सो गँवाया।

मकर-संक्रान्ति के त्योहार के दिन जब माधो किलकारनी के लिए न हँसली-पाज़ेब लाता है, न ही घर आता है, अपितु इनके लिए दिये गये पैसे अम्बो की किसी सख़्त ज़रूरत को पूरा करने के लिए ख़र्च कर आता है तो किलकारनी दरवाज़ा नहीं खोलती और माधो बाहर सर्दी में अकड़ा पड़ा रहता है। किलकारनी उसे अन्दर लाती है। अँगीठी जला कर उसका शरीर गरम करती है और उसके पाँव पर सिर रख देती है। लेकिन माधो को निमोनिया हो जाता है। किलकारनी कहती है निमोनिया वग़ैरह कुछ नहीं है। अम्बो ने कुछ कर दिया होगा। वह तावीज़-गण्डे जानती है। अगर वह बीती रात की घटना को दृष्टि में रखते हुए अपना क़सूर मान लेती तो देवी से कम क्या होती ? अम्बो माधो को देखने आती है तो वह उसे अन्दर नहीं आने देती। माधो को इसका बहुत रंज है। माधो किलकारनी से कहता है कि मरते हुए पति को वचन दो कि मरने के बाद तुम उसकी देखभाल करती रहोगी, और माधो मर जाता है।

किलकारनी की तरह वह लोग जो धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों के स्तर तक जीते हैं, वह दिखावे, अपने-आप में तसल्ली हो जाने और अपने-आपको धोखे में रखने का स्तर है। किलकारनी का आशावाद इस अर्थ में सतही है और माधो का निराशावाद एक गहरे असन्तोष का परिणाम है — वह असन्तोष जो एक कोमल-हृदय व्यक्ति को, चारों ओर दु:ख देखकर, बेचैन कर देता है और वह अपने-आप में सन्तुष्ट जीवन जीने से इनकार कर देता है। किलकारनी बीमारी में चाहे माधो की सेवा करे या अम्बो को धक्के देकर निकाल दे — उसका अच्छा या बुरा आचरण दोनों उसे सन्तोषप्रद लगेगें और दोनों ही आचरण ठीक दिखायी देंगे। ऐसे लोग न तो सामाजिक अन्यायों को देख सकते हैं, न दूसरों के प्रति अपने अन्याय और बुरे व्यवहार का उन्हें ज्ञान रहता है। माधो का मानवीय

सहानुभूति का भाव सच्चा और सद्व्यवहार-पूर्ण है, और पुण्य अथवा नेकी करने की आत्मतुष्टि की भावना से दूर है। केवल ऐसी पवित्र भावना की उपस्थिति में व्यक्ति निडर और लिप्सा-रहित होकर दूसरों के दुःख में सम्मिलित हो सकता है। बात केवल इतनी है कि माधो से दूसरों के दुःख-दर्द देखे नहीं जाते। वह कहता है कि मुझे, किसी भाई या बहिन को दुखी देखकर, मदन और रत्ती के सहेले (विवाह-गीत) गाये नहीं जाते।

'क्वारेन्टाइन' का भार्गव अपनी जाति का रत्ती-भर ध्यान किये बिना प्लेग के रोगियों की ऐसी देखभाल करता है जो केवल उस व्यक्ति में संभव है जिसका अस्तित्व ईश्वरीय सृष्टि की सेवा-भावना में ऐसा घुल-मिल गया हो कि अस्तित्व-भावना शेष तक न रहे। भार्गव नया ईसाई है। अतः ईसा मसीह की शिक्षाओं का भी उस पर गहरा प्रभाव है। इस कहानी में भी बेदी भार्गव और डॉक्टर के चरित्रों का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं, जैसा कि 'मन की मन में' माधो और किलकारनी के चरित्रों के वैषम्य के द्वारा प्रस्तुत किया था। कर्तव्यपरायण डॉक्टर और भार्गव की सेवाभावना में केवल डिग्री का अन्तर है। डॉक्टर बहुत अच्छा मानव है, लेकिन अपनी मानवता की सीमाओं में क़ैद है, लेकिन भार्गव इन सीमाओं से ऊँचा उठकर सन्त या पैग़म्बर के स्तर पर पहुँच जाता है। मानवता को हम देख सकते हैं, उसके गुणों को हम पहचानते हैं, और उसमें दूसरों के प्रति जो सम्मान-भाव रहता है उसके तौर-तरीक़ों और रंग-ढंग से हम परिचित होते हैं। इसीलिए अस्पताल की कमेटी प्लेग के दिनों में डॉक्टर की सेवाओं के बदले उसे रुपयों की थैली और प्रशस्ति-पत्र देती है। वस्तुतः सन्त व्यक्ति के गुण आन्तरिक होते हैं इसलिए बाहरी आँखें उन्हें देख नहीं सकतीं, बल्कि वे तो सन्त व्यक्ति के तौर-तरीक़ों को समझ भी नहीं सकतीं। भार्गव स्वास्थ्य-रक्षा के सभी नियमों की चिन्ता किये बिना, छूत का कोई भय रखे बिना, मरीज़ों के मुँह से मुँह लगाकर उनकी ऐसी सेवा करता है जिसे साधारण बुद्धि से समझा तक नहीं जा सकता था। भार्गव को मृत्यु का बिल्कुल भय नहीं था, और यह निडरता अपने अस्तित्व को पूर्णतः समाप्त करने से प्राप्त हुई थी। मानवता इस अस्तित्व-भावना के चक्कर से बाहर नहीं निकल पाती। यही वह भावना है जो मानव के सदाचरण को किसी-न-किसी मानवी दुर्बलता के दायरें में सीमित रखती है। किलकारनी की स्वार्थपरता और ईर्ष्या और द्वेष से लेकर डॉक्टर की निःस्पृहता और निःस्वार्थता तक अस्तित्व-भावना हज़ारों तरीक़ों से मानवी आचरण को प्रभावित करती है। मानवता के दायरे में रहकर इन मानवी दुर्बलताओं से छुटकारा संभव नहीं। इन दुर्बलताओं के होते हुए भी मानव एक अच्छा अनुकरणीय चरित्र बन सकता है। वह 'क्वारेन्टाइन' के डॉक्टर के व्यक्तित्व में दिखायी देता है। डॉक्टर एक अच्छे चरित्रवान् मानव का नमूना हो सकता है, लेकिन मानवता की सर्वोत्तमता नियत नहीं है, क्योंकि इसके आगे भी आत्मा की पूर्णता के पड़ाव हैं, और भार्गव उसी पड़ाव पर है, पर वह नहीं जानता कि वह उस पड़ाव पर है। लेकिन डॉक्टर जानता है और इसलिए भार्गव के सामने उसे स्वयं के छोटा होने की अनुभूति होती है। यह अनुभूति भी एक चरित्रवान् व्यक्ति की जीत

है, और किलकारनी इसी अनुभूति से वंचित है। इसीलिए डॉक्टर के लिए हमारे मन में सम्मान बढ़ जाता है। पर डॉक्टर की अनुभूति वही है जो एक चरित्रवान् व्यक्ति की सन्त के चरणों में पैदा होती है। पूरी कहानी इस चारित्रिक और आध्यात्मिक नाटक को प्रस्तुत करती है जो एक सच्चरित्रता-जन्य कर्तव्य के अधीन किये गये काम और एक निःस्पृह सहानुभूति के अधीन किये गये काम के सुकुमार और जटिल पक्षों के जान लेने से पैदा होता है।

बेदी की कहानियों में भारतीय समाज के ग़रीब और निचले वर्ग के विभिन्न रूप मिलते हैं। ऊपरी दरजे और बढ़िया फ़ैशनेबल समाज से सम्बद्ध कहानियाँ इनके यहाँ बहुत कम हैं। बेदी ने अधिकतर कहानियाँ उन लोगों के सम्बन्ध में ही लिखी हैं, जिनके जीवन से वह परिचित थे। निर्धन वर्ग के जीवन पर उनकी कहानियाँ मात्र निर्धनता का वर्णन नहीं हैं, अपितु उन कहानियों में भी वह यही देखने का प्रयास करते हैं कि निर्धनता में मानव अपनी मानवता को किस भाँति स्थिर रखते हैं। बेदी की कहानियों में साधारण मानव समाज से कटा हुआ नहीं, अपितु समाज का अंग है। समाज से कटे हुए अकेले आदमी का ग़म बेदी के यहाँ नहीं झलकता। वे लोग जिन्हें समाज अपनी हठधर्मिता अथवा प्राचीन रूढ़ियों के कारण ठुकरा देता है, जैसे कि अछूत, विधवा नारी आदि — उनका ग़म भी इसी कारण से है कि समाज में उन्हें जीवित रहने की आज्ञा तो है, पर प्रतिष्ठित जीवन के अवसर प्राप्त नहीं हैं। बेदी के यहाँ समाज के असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के विरोध में प्रतिवाद मिलता है, और ठुकराये हुए लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति। बेदी सामाजिक, धार्मिक और चारित्रिक व्यवहार की परख भी मानवीय सहृदयता की मान्यताओं की नींव पर करते हैं। चुनाँचे वह व्यक्ति को भी — उसके सभी सांस्कृतिक सम्बन्धों के साथ समाज के एक अंग के रूप में देखते हैं, और इसीलिए निर्धन मनुष्यों और परिवारों का जीवन भी भरे-पूरे मनुष्यों के जीवन का कारुणिक दृश्य प्रस्तुत करता है। निर्धनता के कारण मनुष्य पशुओं की भाँति केवल ज़ीववैज्ञानिक स्तर पर खाने और सन्तति-वृद्धि करने वाले पशु की तरह जीता हुआ — इनकी कहानियों में नहीं झलकता। इस अर्थ में बेदी क्रूर प्रकृति को पसन्द नहीं करते, अपितु मानव-मैत्री और यथार्थ का चित्रण करते हैं। उनके अध्ययन का केन्द्र सदा मानव, उसका हृदय और उसका भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक जीवन रहा है। पर मानवी स्वभाव और मनोविज्ञान का अध्ययन भी वह एक कुशल मनोविश्लेषक की भाँति नहीं, अपितु कलाकार की भाँति करते हैं, और मानव को उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रखकर देखते हैं। यही कारण है कि निर्धनता से पीड़ित वर्ग के जीवन की प्रस्तुति में बेदी भावुकता, आर्द्र-हृदयता, कठोरता और आशावाद के उन ख़तरों से बच जाते हैं जो निर्धनता पर लिखनेवाले कलाकारों को प्रायः झेलने पड़ते हैं। ये ख़तरे बेदी के सामने भी आते हैं, लेकिन वह शैली और तकनीक के द्वारा निर्धनता की कारुणिकता को कलापूर्ण सौन्दर्य-चित्रण पर हावी नहीं होने देते।

उदाहरणार्थ, 'हयातीन बे' ('विटामिन बी') कहानी का रवि स्वयं कहानीकार नहीं है, बल्कि वह नया-नया युवा ओवरसीयर है जो सड़क पर काम करनेवाले मज़दूरों की देखभाल करता है। स्पष्ट है कि कहानीकार स्वयं कहानी बयान करता तो मज़दूरों की विपत्ति और ठेकेदार की कठोर-हृदयता की चर्चा में भावुकता और व्यंग्यपूर्ण शैली को न अपनाना अपेक्षाकृत कठिन होता। ओवरसीयर नया-नया आया है। इसलिए मज़दूर के प्रति न तो वह भावशून्य है, न ही अपनी दयालुता को राह देकर अपनी नौकरी के लिए ख़तरा मोल लेना पसन्द करता है। अगर कोई मज़दूर सुस्ताने या कोई औरत बच्चे को दूध पिलाने बैठ जाती है तो वह कड़क कर आवाज़ देता है, पर फिर नरम पड़ जाता है। 'हयातीन बे' का वर्णनात्मक स्थल इसी भावुकतापूर्ण खींचतान का द्योतक है, जो कहानी को — निर्धनता-ग्रस्त मज़दूर की विपत्ति का विवरण होने पर भी — इतना अधिक करुणाजनक नहीं बनने देता कि इसका पढ़ना कठिन हो जाए।

मातादीन एक अधेड़ वय का ईमानदार मज़दूर है। उसकी पत्नी मनभरी को विटामिन 'बी' की कमी के कारण बेरी-बेरी का रोग लग जाता है, जिससे पुट्ठों पर सूजन आ जाती है। डॉक्टर उसे ऐसी ग़िज़ाएँ बताता है जो माश की दाल पर गुज़ारा करनेवालों को स्वप्न में भी दिखायी नहीं देतीं। मातादीन मज़दूरी छोड़कर छावनी चला जाता है जहाँ के डण्डीदार ने उसे कुली का काम करने और छावनी के रसोईघर में से पनीर, अण्डे आदि मुफ़्त दिलाने का वादा किया होता है। वस्तुतः डण्डीदार की नज़र मातादीन की सुन्दर पत्नी मनभरी पर है। जब मातादीन को इसकी जानकारी होती है तो वह मनभरी को साथ लेकर छावनी से निकल जाता है। इसी बीच मनभरी गर्भवती हो गयी होती है, और छावनी के स्टोर में बोरियाँ उठाते-उठाते मातादीन के कन्धे पर एक बड़ा ज़ख़्म पड़ गया होता है जिसमें से पीब दिखायी देती है। ओवरसीयर पशु-सुरक्षा-परिषद् के अफ़सर से कहता है, "क्या आपका महकमा ऐसे ज़ुल्म की रोकथाम नहीं करता ?" अफ़सर उत्तर देता है, "वह तो केवल पशुओं के लिए है।" अन्त में मातादीन डॉक्टर के दवाख़ाने से मनभरी के लिए दवा की बोतल चुराता है, पकड़ा जाता है और जेलख़ाने में बन्द कर दिया जाता है। इधर मनभरी का गर्भ भी गिर जाता है और मनभरी झोंपड़ी में पड़ी अन्तिम साँस लेने लगती है।

कहानी मज़दूरों के उस वर्ग से सम्बन्ध रखती है जो ग़रीबी की रेखा के नीचे जीता है। उसका जीवन निरन्तर तन-तोड़ परिश्रम के सिवा कुछ नहीं होता। इस स्थिति की पराकाष्ठा की द्योतक है यह कहानी, जिस की कला इस अर्थ में अति मोहक है कि दैनिक जीवन की सीधी-सादी घटनाएँ भी अतिनाटकीय प्रतीत होती हैं। बीमारी, मौत, चोरी, डकैती, हत्या, जेल, बेकारी, भूखों मरना ही वे घटनाएँ हैं जो इस जीवन में घटित होती रहती हैं। और, यदि सब घटित नहीं भी होतीं तो पशु के समान निरन्तर परिश्रम करना उनका जीवन है ही। इसलिए जकड़ी हुई स्थितियों के अधीन जीनेवाले वर्ग की कहानी 'कला' के लिए एक बहुत बड़ी परीक्षा है। बेदी का मनोरंजक विवरण और अंग-प्रत्यंग

का चित्रण-कौशल उन्हें इस परीक्षा में सफल सिद्ध कर देते हैं।

'पान-शाप' में दो छोटे दूकानदारों की निर्धनता-जन्य दुर्दशा का वर्णन है। बेदी का छोटी-मोटी हर वस्तु का चित्रण-कौशल इस कहानी में भी रंग भर देता है। बेगम बाज़ार और उसकी दुकानों का चित्र उन्होंने इस भाँति खींचा है कि मस्तिष्क में अंकित हो जाता है। कहानी का आरम्भ बेदी इन वाक्यों से करते हैं :

> "बेगम बाज़ार की मनहूस दूकान में एक बार फिर बेलदार दसूती के भारी-भारी परदे लटकने लगे। चंबल और दाद दूर करनेवाली जापानी खिलौनों की दुकान, 'ओसाका फ़ेअर' (जापान से सम्बन्धित) के कर्मचारी आश्चर्य से थारूलाल फ़ोटोग्राफ़र को ओक प्लाई का डार्क रूम बनाते देखकर उसके अन्धकारमय भविष्य पर आँसू बहाने लगे।"

बाज़ार के दृश्य का वर्णन बेदी ने कैमरे की आँख से किया है, और कैमरा जहाँ रुकता है, वह चीज़ों की ज़बानी एक कहानी सुनाता है। पान-शाप — जिसमें ज़रूरतमन्द लोग अपनी चीज़ें रहन रखते हैं, पर वे वहीं रह जाती हैं, क्योंकि उन्हें छुड़ाने की सामर्थ्य वे कभी पैदा नहीं कर सकते — जब कैमरे के फोकस में आती है तो कम दामों पर ख़रीदी हुई चीज़ों की जुबानी अपनी कहानी इस तरह सुनाती है :

> "पान-शाप में खड़िया मिट्टी से साफ़ किये हुए शीशे बहुत ही खूबसूरत दिखायी देते थे। एक हल्की सब्ज़ झलक रखनेवाले शीशे के पीछे एक हुक के साथ एक नफ़ीस सुनहरी सेकन्डस घड़ी लटक रही थी। उसके नीचे कानून और शरीयत की किताबें बेतरतीबी से पड़ी थीं। शायद कोई क़ानून का बेकानून और फ़जूलख़र्च छात्र इतनी कीमती किताबें कौड़ियों के मोल गिरवी रखकर पैसे ले गया था। किताबों के पीछे एक पुरानी सिंगर मशीन पड़ी थी। इसे गिरवी रखनेवाले को इतनी ज़रूरत या जल्दी थी कि उसने मशीन पर से धागे की गोली भी न उठायी थी।"

एक ऐसी ही तस्वीर उस ईसाई लड़की की है जो दो बार बेगम बाज़ार में पान-शाप से नशेबी चौक और नशेबी चौक से पान-शाप की ओर आती है। वह बार-बार पान-शाप के अन्दर देखती है। शायद वह चाहती है कि पान-शाप के अन्दर बैठे हुए दो आदमी चले जाएँ और सिपाही अपना काम करके छुट्टी कर जाएँ तो वह एकान्त में स्वतन्त्र होकर अपना कारोबार कर सके। या, शायद वह अपना माल गिरवी रखती हुई झिझकती थी — हालाँकि उसके पास गिरवी रखने के लिए कोई चीज़ दिखायी न देती थी। पान-शाप के अन्दर जाने के बाद लड़की जब बाहर निकलती है तो दायाँ हाथ ऊपर उठाकर अपनी उंगली को जड़ से मसलती है। उंगली पर एक पीला दायरा दिखायी देता है। न जाने कितनी ज़रूरत से मजबूर होकर उसने अपनी सबसे प्यारी चीज़ — अपने रोमाण्टिक जीवन-साथी की आख़री निशानी — पान-शाप में गिरवी रख दी थी।

ऐसी ही दूसरी तसवीरें मिलकर बेगम बाज़ार की वह पृष्ठभूमि बनाती हैं जिसमें

थारूलाल फ़ोटोग्राफ़र और ओकासा फेअर के ख़ानज़ादे के टूटते हुए व्यापार की कहानी जन्म लेती है। दोनों आर्थिक अवमूल्यन का शिकार होकर एक-दूसरे की आँख बचाकर अपनी दूकानों का माल पान-शाप में गिरवी रखने पर मजबूर हो जाते हैं।

छोटे दूकानदारों की आर्थिक कठिनाइयों के साथ-साथ बेदी हाथ की तंगी का एक रूप मध्यम वर्ग के उस घराने में दिखाते हैं जिसे सदा अपनी आर्थिक कठिनाइयों की अनुभूति साधारणतया उस समय होती है जब जवान बेटियों की शादी और उनके दहेज की समस्या सामने आती है। इस घिसे-पिटे विषय को भी बेदी अपने शिल्प से दुःख-दर्द का भावुकता-पूर्ण विवरण बनाने के स्थान पर एक सुन्दर कहानी का रूप दे देते हैं। 'ऐवॅलांश' (Avalanche : हिम-धाव) में कलात्मक सौन्दर्य को प्रस्तुत करने का तरीका यह अपनाया गया है कि कहानी का प्रमुख पात्र रावी, जो कि एक वृद्ध व्यक्ति है, अपनी निजी कठिनाइयों को अख़बार पढ़ने के द्वारा, जिसमें दूसरे लोगों के कष्टों और मुसीबतों की ख़बरें होती हैं, भूलने की कोशिश करता है। भाँति-भाँति की ख़बरों में, जिन्हें बेदी अति सहजता से कहानी के ताने-बाने में बुनते जाते हैं, एक ख़बर यह है कि नन्दा देवी के समीप एक चोटी पर पहुँचने के लिए अन्तर-राष्ट्रीय लोगों का एक दल आ रहा है। यह ख़बर कहानी के केन्द्रीय संकेत 'हिम-धाव' के निर्माण में सहायक बनती है। फिर एक और ख़बर है जिसका कहानी के विषय के साथ सीधा सम्बन्ध है कि लड़की वाले दहेज देने से इनकार कर देते हैं और बारात को ख़ाली लौटना पड़ता है। यह ख़बर पढ़कर सब घर वाले प्रसन्न हो जाते हैं।

परन्तु घर पर मुसीबत आती है। बड़ी लड़की के लिए जो बात चल रही थी, वह दहेज कम होने के कारण टूट जाती है। यह ट्रेजेडी ऐसी तो नहीं, जिसका वर्णन कहानियों में न हुआ हो, यह तो दिन-प्रतिदिन की घटनाएँ हैं। लेकिन बेदी ने दुःखी पिता की मानसिकता को केन्द्र बनाकर पूरी व्यथा-कथा को एक ऐसी संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है कि एक दयनीय स्थिति में नयी ताज़गी पैदा हो गयी है। इस ताज़गी में हिम-धाव के संकेत के बढ़ जाने से एक कलात्मक नवीनता पैदा होती है। पिता फिर अख़बार लेकर बैठ जाता है और ख़बर पढ़ता है कि पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की कोशिश करनेवाले दल को हिम-स्खलन ने आ घेरा है। जब हिम-धाव आता है तो वह बड़े-बड़े वृक्षों, छोटे-छोटे पौधों — हर पेड़ और फल — को बहा ले जाता है। गाँव के गाँव तबाह हो जाते हैं। इस प्रतीक का इस परिवार की हालत से कितना गहरा सम्बन्ध है — पिता को नौकरी से हटा दिया गया है, क्योंकि उसने बेटी को दहेज देने के लिए रिश्वत ली थी। एक पत्नी, दो बेटियाँ, तीन भतीजियाँ, यों कहिए कि सभी बर्फ़ के ढेर में दब गये हैं। पर एक दिन उसकी बड़ी लड़की ताज़ा अख़बार लिए दौड़ती आती है। ख़बर है कि एक हवाई कामांडर के अधीन एक रक्षक पार्टी ने हिम-धाव की लपेट में आये हुए सब आदमियों को बचा लिया है। पिता पूछता है — "क्या रक्षक पार्टी आएगी ? क्या सदा आती है ?" इस प्रश्न पर कहानी समाप्त हो जाती है। क्या बेटी अब विवाह के बिना रहेगी, क्या वह नौकरी

करेगी, क्या दहेज माँगे बिना विवाह करने वाला कोई लड़का आएगा ? न जाने इस ख़बर को सुनाने के पीछे बेटी का इरादा क्या है'? यह अज्ञात भाव करुणा का नियन्त्रण भी करता है और उसे गहरा भी करता है।

'ग्रहन' ('ग्रहण') बेदी की सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोक-प्रिय कहानियों में से एक है। अपने दूसरे कहानी-संग्रह 'ग्रहन' का नाम भी उन्होंने इस कहानी पर रखा, और इसका समर्पण भी 'ग्रहन' की दुखियारी नारी 'होली' के नाम किया। होली के चरित्र में भारतीय नारी की विपदा और उस पर किये गये अत्याचारों का वर्णन इतने प्रभावशाली रूप में किया गया है कि दिल काँप उठता है। लेकिन 'ग्रहन' कहानी नारी की विपदा की कहानी से आगे जाती है। यह एक पीड़ित आत्मा की 'छुटकारा पाने की इच्छा' की कहानी बन जाती है। उर्दू के प्रसिद्ध समीक्षक बाक़िर मेंहदी लिखते हैं :

> "होली का चरित्र एक ऐसी नारी की कहानी है जो हर रोज़-रोज़ की दम घोंट देनेवाली ज़िन्दगी से तंग आ चुकी है, जिसे एक मानवी के रूप में पशु से अधिक दरजा नहीं दिया जाता है। उसे इतना भी प्यार नहीं मिलता जितना कि एक मुहब्बत की नज़र में होता है। 'ग्रहन' एक त्योहार न होकर ज़िन्दगी पर छायी हुई स्याही का प्रतीक है। उसका पति रसीले उसे बात-बात पर मारता है। उसकी सास ताने दे-दे कर उसे तंग कर चुकी है और उसके बच्चे बेजान खिलौने भी नहीं हैं कि वह जिनसे दिल बहला सके। और, जब वह घबरा कर भीड़ में गुम होकर अपने मैके भागना चाहती है तो और भी परेशानी में क़ैद हो जाती है — एक ग़ार से दूसरी ग़ार में। खेतूराम उसके गाँव का 'भाई' बनकर भी उस गर्भवती होली को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। उससे वह भागती है। मगर कहाँ जाए, क्या करे ? शायद भागने ही में छुटकारे का कोई रास्ता निकल आए। बेदी ने नारी के जीवन का सारा दर्द, उस पर बर्बरता, उसकी असीम मजबूरियाँ और लाचारियाँ, और उसके सभी गुणों को होली के चरित्र में समा दिया है।

इस कहानी में पहली बार वह लाक्षणिक और मिथकीय शैली उभरती है जिसे डॉ. गोपीचन्द नारंग ने बेदी का व्यावर्तक गुण माना है। वह लिखते हैं :

> "लेकिन वह कहानी जिसमें बेदी ने लाक्षणिक शैली का पहली बार पूरी तरह प्रयोग किया है, और मिथकीय वातावरण उभार कर कथानक का उसके साथ निर्माण किया है — 'ग्रहन' है। उसमें एक ग्रहण तो चाँद का है और दूसरा ग्रहण इस पार्थिव चाँद का है जिसे साधारण भाषा में 'नारी' कहते हैं, और जिसे पुरुष अपनी स्वार्थपरता और वासना के कारण सदा 'गहनाने' के लिए तैयार रहता है। होली एक ग़रीब, विवश और लाचार औरत है। उसकी सास राहु है और उसका पति केतु, जो हर समय उसका खून चूसने और अपना ऋण वसूल करने में लगे रहते हैं। होली की — सुसराल से मायके भाग निकलने की — कोशिश भी ग्रहण मे

छूटने का रूपक है। लेकिन चन्द्र-ग्रहण की अपेक्षा सामाजिक जकड़ का ग्रहण कहीं अधिक अटल है। इस कहानी की सार्थकता का रहस्य यही है कि इसमें चन्द्र-ग्रहण और उससे सम्बन्धित मिथकीय कथाओं का प्रयोग इतना सटीक ढंग से किया गया है कि कहानी के घटना-चक्र में आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न हो गया है।"

"रूपो, शब्बो, कत्थो और मन्ना — होली ने असाढ़ी के कायस्थों को चार बच्चे दिये थे, और पाँचवा कुछ ही मास में जननेवाली थी। वह होली जिसे उसकी मय्या, 'चाँद रानी' कहकर पुकारा करती थी, और जिसके स्वास्थ्य और सौन्दर्य से उसके पति को ईर्ष्या थी — गिरे हुए पत्ते की भाँति पीली और मरणासन्न हो चुकी थी।"

"आज चन्द्र-ग्रहण था। सांय होते ही चाँद ग्रहण के घेरे में दाख़िल हो जाता है। होली को आज्ञा न थी कि वह कोई कपड़ा फाड़ सके — पेट में बच्चे के कान फट जाएँगे। वह सिलाई न कर सकती थी —मुँह-सिला बच्चा पैदा होगा। चार बच्चों, तीन मर्दों, दो औरतों, चार भैंसों का यह बड़ा कुनबा और अकेली होली। देवर है तो वह अलग पीट लेता है, और सास के 'कोसने' मार-पीट से कहीं बुरे हैं।" "इन सबको भला मेरी जान लेने का क्या हक़ है ? रसीला की बात तो दूसरी है। शास्त्रों ने उसे परमात्मा का दरजा दिया है। वह जिस छुरी से मारे उसी छुरी का भला। लेकिन क्या शास्त्र किसी औरत ने बनाये हैं ? और, मय्या की तो बात ही अलग है। शास्त्र किसी औरत ने लिखे होते तो वह नारी-जाति पर इससे भी अधिक प्रतिबन्ध लगाती।"

"रसीले ने एक कामासक्त दृष्टि से होली की ओर देखा, 'मैं पूछता हूँ भला इतनी जल्दी काहे की थी ?' 'जल्दी कैसी ?' — रसीला पेट की ओर संकेत करते हुए बोला, 'तुम भी तो कुतिया हो कुतिया।' होली सहमकर बोली — 'तो इसमें मेरा क्या क़सूर ?' होली ने बिना जाने-बूझे रसीले को वहशी, बदचलन, कामुक भी कह दिया। चोट सीधी पड़ी और दूसरे क्षण में उंगलियों के निशान होली के गालों पर दिखायी देने लगे।"

"अब होली नहीं जानती बेचारी कि वह रोटियाँ पकाये या दुपट्टा धोये, बोले या न बोले, हिले या न हिले। वह कुतिया है या नवाबज़ादी। अपराधी और निरपराध होने की तो बात ही अलग है — क्योंकि यह कोई सुनने को तैयार नहीं कि इसमें होली का क्या गुनाह है, सब गुनाह होली का है।"

ऐसे ही विवरणों और घटनाओं द्वारा बेदी यह जतलाते हैं कि होली असहनीय स्थितियों के शिकंजे में जकड़ी हुई एक ऐसी औरत है जिसमें केवल एक इच्छा बच पाती है और वह है छुटकारा पाने की इच्छा। अब चाँद ग्रहण के घेरे में आने वाला था। अब मय्या, रसीला, बड़ा लड़का शब्बो और होली सब समुद्र की ओर जा रहे थे। समुद्र के तट पर पवन-मिल के समीप एक लांच खड़ा था जो आठ बजे सारंगदेव ग्राम की ओर रवाना होगा, जहाँ होली का मैका था। होली ने एक नज़र शब्बो की ओर देखा। शब्बो हैरान था कि

उसकी माँ ने इतनी भीड़ में झुक कर उसका मुँह क्यों चूमा ? और एक गरम-गरम बूँद कहाँ से उसकी गालों पर आ पड़ी ? आध घंटा में वह लांच के सामने खड़ी थी। वह कुछ समय तक लांच के एक कोने में होश-खोये सी बैठी रही। अँधेरे में थोड़ा-थोड़ा हँसने और बातें करने की आवाज़ें आती रहीं। फिर आबकारी का एक सिपाही लांच में आया तो उसे पहचान कर होली की कुछ आशा बँधी। वह सिपाही सारंगदेव ग्राम ही का एक छोकरा था और मैके के रिश्ते से होली का भाई था। होली ने उससे विनयपूर्वक कहा, "कत्थू भय्या, मुझे सारंगदेव ग्राम पहुँचा दो।" कत्थूराम ने पूछा, "क्या तुम असाढ़ी से भाग आयी हो ?" होली ने कहा, "हाँ।" कत्थूराम बोला, "क्या यह शरीफ़ज़ादियों का काम है, और जो मैं कायस्थों को ख़बर करूँ, तो ?" कत्थूराम होली को सराय में ले जाता है। कहता है, "यहाँ से कुछ दूर नाव पड़ती है। पौ फटे ले चलूँगा। यूँ घबराओ नहीं। रात की रात सराय में आराम कर लो।" कुछ देर बाद कत्थूराम सराय की कोठरी में आया तो उसके मुँह से शराब की बू आ रही थी।

समुद्र की एक बड़ी भारी उछाल आयी। सब फूल, बताशे, आम की टहनियाँ, गजरे और जलता हुआ मुश्क कपूर बहाकर ले गयी। इसके साथ ही इन्सानों के घिनौने गुनाहों को भी लेती गयी। फिर शंख बजने लगे। उसी समय सराय में से कोई औरत निकल कर भागी — सरपट, बगटुट . . . . . वह गिरती थी, भागती थी, पेट पकड़कर बैठ जाती, हाँपती और दौड़ने लगती . . . उस समय आकाश पर चाँद पूरा 'गहना' चुका था। राहु और केतु ने जी भर कर क़र्ज़ वसूल किया था। दो धुँधले-से साये इस औरत की मदद करने के लिए घबराये हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था, और दूर असाढ़ी से हल्की-हल्की आवाज़ें आ रही थीं — "दान का समय है छोड़ दो . . . . छोड़ दो . . .", यह उन दान लेनेवाले भिखारियों की आवाज़ें थीं जो चाँद को राहु और केतु की क़ैद से छुड़ाने के लिए 'छोड़ दो' की आवाज़ें लगाते फिरते हैं। होली पेट पकड़े हाँपती भाग रही है, और हरफूल बन्दरगाह से आवाज़ें आ रही हैं — "पकड़ लो, पकड़ लो . . . छोड़ दो . . . दान का समय है . . . पकड़ लो, पकड़ लो . . . छोड़ दो . ."

बेदी की कहानियों में नारी के असंख्य रूप हैं। 'भोला', 'छोकरी की लूट' और 'मन की मन में' कहानियों में विधवा नारियों की झलकियाँ हैं। 'बाप बिकाऊ है' और 'नारी का बुख़ार' में वह नारी है जो सेक्स के मामले में अपने को ठण्डा कर लेती है। 'टरमिनस् से परे' में बहिन का रूप है जो एक अमीर भाई की ग़रीब बहिन होने पर भी बिना किसी लालच और स्वार्थ के उससे असीम प्रेम करती है। 'चेचक के दाग़' में वह औरत है जो 'स्वीकार-भावना'[1] की प्रतीक है। यह नयी ब्याहता चेचक के दाग़ों वाले अपने कुरूप पति को स्वीकार कर लेती है, लेकिन कुरूप पति शय्या-गृह से इसलिए नाराज़ होकर निकल जाता है कि उसकी दुल्हन की नाक ज़रा लम्बी है। 'गरम कोट' में वह गृहस्थिन है जो

1. जो जैसा है वह ठीक है — ऐसा मानना।

अपनी आवश्यकताओं के लिए पति से पैसे माँगते समय अपने को वेश्या महसूस करती है। 'अग़वा' ('अपहरण') में वह लड़की है जो घर बनानेवाले मज़दूरों मे से एक के साथ भाग जाती है। 'छोकरी की लूट' में वह लड़की है जो आँखें कहीं लड़ाती है और शादी किसी और के साथ हो जाने पर उसका घर बसा लेती है। 'दीवाला' में वह लड़की है जिसकी कामुकता 'अग़वा' की मुग्धा ही के समान तीव्र और प्रचण्ड है, लेकिन राजस्थानी बनियों के परिवार में उसकी अन्दर की आग हड्डियों के बुख़ार में बदल जाती है। 'कोखजली', 'यूक्लिपटस्', और 'एक औरत' में औरत माँ के रूप में है। 'लाजवन्ती' में वह औरत है जो बसकर उजड़ जाती है, क्योंकि औरत देवी के रूप में नहीं — औरत ही के रूप में ज़िन्दा रहती है। 'अपने दुख मुझे दे दो', और 'एक चादर मैली-सी' में औरत का मिथकीय रूप अपनी पूर्णता को पहुँचता है, और वह नारी सामने आती है जो प्रकृति की सर्जनात्मक क्षमता की प्रतिनिधि है, और पत्नी के रूप में एक 'दिव्य नारी' और जननी के रूप में 'उत्कृष्टतम माता' का प्रतीक है।

'जोगिया' बेदी की अनुपम कहानी है। इस कहानी में चढ़ती जवानी की कामुकता 'सौन्दर्य-बोध' में बदल गयी है। जोगिया और जुगल में कामुक भावनाएँ पाशविक रूप धारण नहीं करतीं, अपितु आनन्द और मस्ती में बदल जाती हैं, जिससे आस-पास की हर वस्तु सुन्दर दिखायी देती है और मनुष्य उसी आह्लाद में जीता है जो केवल जीवित रहने का आह्लाद है। जोगिया को ऋतुओं के अनुसार साड़ियों के रंग पसन्द करने का सलीक़ा था, और वह जो साड़ी पहनती थी जुगल को पूरी दुनिया उसी रंग में रँगी नज़र आती थी। जुगल चित्रकारिता सीख रहा था और जोगिया उसके भावुक और कलात्मक मानस को विविध वर्णों और सौन्दर्य से भर रही थी। पूरी कहानी रंगों की बारिश में नहायी हुई है। बेदी के विवरणात्मक स्थल कवित्वपूर्ण और ललित शैली में डूबे हुए हैं। बेदी चित्रकला और मूर्तिकला के आधार पर अपने बिम्बों को गढ़ता है। जोगिया के सौन्दर्य का विवरण देखिए :

> "जोगिया का चेहरा सोमनाथ के मन्दिर के पुरोमुख की भाँति चौड़ा था जिसमें कंदील जैसी आँखे रात के अँधेरे में भटके हुए यात्रियों को रोशनी दिखाती थीं। मूर्ति में नाक और होंठ पन्ने और मानिक की तरह टँके हुए थे। सिर के बाल कमर से नीचे तक की पैमाइश करते थे, जिन्हें वह कभी ढीला-ढीला और भीगा-भीगा रखती, और कभी इतना ख़ुश्क बना देती कि उनकी कुछ लटें बाक़ी बालों से ख़्वामख़्वाह अलग होकर चेहरे और गरदन पर मचलती रहतीं। उसका चेहरा क्या था पूरा नक्षत्र-मण्डल था, जिसमें चाँद विचारों और भावनाओं के साथ घटता और बढ़ता रहता था।"

'लाजवन्ती' बेदी की बहुत प्रसिद्ध कहानी है। फ़सादों के विषय पर जब इनके समकालीन लेखक कहानियाँ लिख रहे थे, बेदी ने केवल यही एक कहानी लिखी। 'लाजवन्ती' एक अपहृता नारी के ढूँढ निकालने की कहानी है। देश के विभाजन के दिनों में जो रक्त-रंजित

फ़साद हुए, उनमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों — तीनों फ़िरकों की अनगिनत नारियों का अपहरण किया गया। फ़सादों का ज़ोर कम हुआ तो इन नारियों को ढूँढने की कोशिशें की गईं, लेकिन लोग इन औरतों को अपने घरों में बसाने को तैयार नहीं थे, इसलिए समाज-सुधारक लोग इन नारियों को 'घर में बसाओ' का आन्दोलन चलाते हैं, और लाजवन्ती का पति सुन्दरलाल इस आन्दोलन का कर्मठ कार्यकर्ता है। अन्ततः, लाजवन्ती का — जिसका अपहरण किया गया था — पता लग जाता है और वह गाँव वापस लायी जाती है। सुन्दरलाल उसे घर ले जाता है और बड़े प्यार और मुहब्बत से रखता है। एक दिन वह लाजो से पूछता है, "कौन था वह . . . . . ?" लाजवन्ती ने निगाहें नीची करते हुए कहा, "जुम्माँ।" फिर वह अपनी निगाहें सुन्दरलाल के चेहरे पर जमाए कुछ कहना चाहती थी कि सुन्दरलाल ने पूछ लिया, "अच्छा सलूक करता था वह ?" "हाँ।" ''मारता तो नहीं था ?" लाजवन्ती ने अपना सिर सुन्दरलाल की छाती पर सरकाते हुए कहा, "नहीं तो . . . . . . !" और फिर बोली, "उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। यद्यपि वह मारता नहीं था, पर मुझे उससे अधिक डर लगता था। तुम मुझे मारते भी थे, फिर भी तुमसे डरती नहीं थी। अब तो न मारोगे ?" सुन्दरलाल की आँखों में आँसू उमड़ आये, और उसने बहुत लज्जित होते हुए अत्यन्त खेद-पूर्वक कहा, "नहीं देवी ! अब नहीं मारूँगा, ... नहीं मारूँगा।" "देवी ?" — लाजवन्ती ने सोचा और आँसू बहाने लगी।

लाजवन्ती बसकर भी उजड़ गयी, क्योंकि सुन्दरलाल उसे नारी की तरह चाहने के स्थान पर देवी की तरह उसकी पूजा करता था। लाजवन्ती तो वही पुरानी लाजो हो जाना चाहती थी जो गाजर से लड़ पड़ती और मूली से मान जाती। लेकिन सुन्दरलाल तो उसे इस तरह रखने लगा मानो लाजवन्ती काँच की कोई चीज़ है, जो छूते ही टूट जाएगी। इसमें मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि नारी मानवीय स्तर पर ही जीना चाहती है। इतनी छुई-मुई नहीं होना चाहती कि नारी होने के कारण नर और नारी का जो मूलभूत सम्बन्ध है उसमें दरार पैदा हो जाए। वह मुसलमान जो उसको अपहृत कर ले गया था, उससे औरत की ही तरह सलूक करता था, जिससे दोनों मे वह मानवीयता पैदा हो गयी थी, जो यौन-सम्बन्ध की उपज है। जुम्माँ उसे मारता नहीं था, लेकिन लाजो उससे डरती थी क्योंकि वह अपहृता थी, और इसीलिए उसकी हैसियत निश्चित नहीं थी। जुम्माँ के साथ उसके सम्बन्ध को किसी सामाजिक या नैतिक विधान का आधार प्राप्त नहीं था। इसलिए वह नहीं जानती थी कि मात्र यौन सम्बन्ध पर स्थापित मेलजोल कब तक दृढ़ प्रमाणित हो सकता है। नारी के प्रति रुचि की कमी कभी भी इस सम्बन्ध और मेलजोल को समाप्त कर सकती है। यही अनिश्चित स्थिति 'जुम्माँ' को लाजो के लिए एक ऐसा 'इतर' व्यक्ति बनाती थी जो 'सुन्दरलाल' उसके लिए नहीं था। सुन्दरलाल उसे मारता था, उससे बुरा व्यवहार करता था, पर वह उसका अपना था, उसका पति था, घरवाला था, क्योंकि विवाह के माध्यम से समाज ने इस सम्बन्ध की पुष्टि की थी। इसलिए दोनों के बीच का सम्बन्ध अनिश्चित

और अस्थिर नहीं था। पर समाज उसे सुरक्षा दे सकता है, खुशी नहीं दे सकता। खुशी का स्रोत तो वह सम्बन्ध है जो कि पुरुष नारी के साथ स्थापित करता है। सुन्दरलाल इस सम्बन्ध को पुजारी और देवी के सम्बन्ध में बदल देता है। नारी पत्थर की मूर्ति नहीं बनना चाहती, बल्कि नारी ही रहना चाहती है जो अपना दुःख-सुख पति के कन्धे पर सिर रखकर कहती चली जाए, पर सुन्दरलाल के पास उसके आँसू देखने के लिए न आँखें थीं और न आहें सुनने के लिए कान।

'अपने दुःख मुझे दे दो' बेदी की उत्कृष्ट कहानी है। वैसे तो इस कहानी में एक ऐसी नारी का चरित्र प्रस्तुत किया गया है जो पूरे परिवार को सँभालती है, वृद्धों की सेवा करती है, बच्चों का पालन करती है, देवर को पढ़ाती है, ननद का विवाह करती है, और आवारापन की राह पर क़दम बढ़ाते हुए पति को फिर अपने शयन-कक्ष में लाती है और उसे मुग्ध बनाती है – यह कहानी इतने यथार्थवादी स्तर पर लिखी गयी है कि प्रेमचन्द की कहानियों की तरह एक आदर्श नारी की कहानी प्रतीत होती है, लेकिन विशुद्ध यथार्थवादी स्तर पर भी बेदी ने ऐसी मनोरंजक घटनाओं, अंग-प्रत्यंग के चित्रण और वातावरण-निर्माण का आधार लिया है जो कि प्रेमचन्द से संभव नहीं था। कहानी प्रस्तुत करने की बेदी की अपनी निराली और भिन्न शैली है जिससे बेदी की कहानी सबसे अलग पहचानी जाती है। इस शैली और शिल्प की विशिष्टता यह है कि प्रकट रूप से तो वह यथार्थ-चित्रण के ही स्तर पर अपनी प्रस्तुति करता है जिससे साधारण पाठक न केवल यह कि उनकी कहानियों से रस-विभोर होते हैं, अपितु उनकी अर्थगत गम्भीरता से नवीन दृष्टि भी प्राप्त करते हैं। पर बेदी यथार्थ-चित्रण की भूमि पर अपने क़दम दृढ़ता से जमाने के बाद बड़ी सहजता से सांकेतिक और मिथकीय वातावरण में अपनी कल्पना की उड़ान से वह अर्थगत गाम्भीर्य पैदा करते है जिन तक पहुँचने के लिए सुविज्ञता-सम्पन्न आलोचन-क्षमता की आवश्यकता रहती है। डॉ. गोपीचन्द नारंग ने बेदी की मिथकीय और अर्थगत विशिष्टताओं के सम्बन्ध में जो बहस की है, वह इसी कोटि की है।

'अपने दुःख मुझे दे दो' में बेदी ने नारी के आदर्श को नहीं अपितु उसकी परम्परागत विशिष्टता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नारी चाहे नये युग की हो या पुराने युग की, जब तक वह नारी है वह कुछ ऐसी लैंगिक विशेषताओं को सहेजे रखेगी, जिन्हें वह यदि अस्वीकार करेगी भी तो अपनी प्रकृति के विपरीत एक अपराध करके और इसे दबा कर। बेदी ने इस कहानी में नारी की इन्हीं लैंगिक विशेषताओं को उभारा है। परिणामतः, इन्दु नारी का आदर्श रूप नहीं, बल्कि, आर्किटाइप[1] प्रस्तुत करती है जिसमें हर रूप समाया हुआ है। वह श्वसुर के लिए एक ऐसी पुत्रवधू है जो पुत्री की तरह उनकी सेवा करती है और जिसमें श्वसुर को अपनी दिवंगता पत्नी की छवि दिखायी देती है, और फिर वे क्षण भी खुले रूप में आते हैं जब ये सब सम्बन्ध मिट जाते हैं और इन्दु में दिव्य नारी का रूप

1. आद्य रूप, परम्परागत रूप।

झलकने लगता है। वह प्रकृति की रहस्यमय सर्जनात्मक शक्तियों को दिखानेवाली बन जाती है। यही वह सीमा-रेखा है जो नारी के मिथकीय रूपों को गृहस्थिन के आदर्श से अलग कर देती है।

एक नारी होने के नाते इन्दु पर घर चलाने, रोगियों की सेवा करने, रीति-रिवाज निभाने, सबको खिलाने-पिलाने, बच्चे बड़े करने, देवर-ननद को ठीक ठिकाने लगाने की इतनी ज़िम्मेवारियाँ हैं कि अपने पति मदन की ओर अपनी ज़िम्मेवारी पूरी करने में, स्वाभाविक रूप से, उससे लापरवाही हो जाती है। जब मदन 'हुस्न के बाज़ार' के रास्ते पर चल निकलता है, तब इन्दु का माथा ठनकता है। वह अपने मदन के लिए सजती है और एक विचित्र-सी हँसी हँसते हुए वह मदन से चिमट जाती है। आनन्द-विभोर होते हुए मदन कहता है — "आज बरसों के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई है। इन्दु ! मैंने सदा चाहा था. . ."

"लेकिन तुमने कहा नहीं", इन्दु बोली, "याद है शादी की रात मैंने तुमसे कुछ माँगा था।"

"हाँ", मदन बोला — "अपने दुख मुझे दे दो।"

"मैंने ?" मदन ने हैरान होते हुए कहा, "मैं क्या माँगता ? मैं तो जो कुछ माँग सकता था, वह सब तुमने दे दिया — मेरे प्रियजनों से प्यार, उनकी शिक्षा, उनका विवाह, ये प्यारे-प्यारे बच्चे — यह सब कुछ तो तुमने दे दिया !"

"मैं भी यही समझती थी", इन्दु बोली, "लेकिन अब जाकर पता चला कि ऐसा नहीं है।"

"क्या मतलब ?"

"कुछ नहीं।" फिर इन्दु ने रुक कर कहा, "मैंने भी एक चीज़ रख ली।"

"क्या चीज़ रख ली ?"

इन्दु कुछ देर चुप रही और फिर अपना मुँह परे करते हुए बोली, "अपनी लाज, अपनी खुशी . . . . उस समय तुम भी कह देते, 'अपने सुख मुझे दे दो', तो मैं . . . . " और इन्दु का गला रुँध गया। और कुछ देर बाद वह बोली, "अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।"

बेदी की कहानियों में 'सेक्स' इसी तरह सदा परदे में रहा है, पर उनके आख़िरी दौर की कहानियों में 'सेक्स' स्पष्ट रूप से सामने आता है। 'कल्याणी', 'मैथुन', 'सोफ़िया', 'बारी का बुख़ार' बेदी की ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें उन्होंने सेक्स-सम्बन्धी अनुभवों को कहानी का विषय बनाया है। संयोगवश ये कहानियाँ बेदी की कहीं अधिक दुर्बोध कहानियाँ भी हैं। सेक्स की ओर इस झुकाव को देखकर बेदी के बहुत से प्रशंसक उनसे नाराज़ भी हुए। उन्होंने कहानियों की दुर्बोधता को कला-सम्बन्धी असफलता समझा और इस बात

में सन्तोष कर लिया कि, जो भी हो, ये कहानियाँ बेदी की प्रतिनिधि कहानियाँ नहीं बन सकीं। पर सच्चाई यह है कि समालोचक बेदी की इन कहानियों की वास्तविक अर्थवत्ता को समझ नहीं पाये। सेक्स में भी बेदी का रूझान मूलतः समाज, मनोविज्ञान और सच्चरित्रता से सम्बन्धित है। उनकी कहानी 'कल्याणी' पर बहुत नुक्ताचीनी की गयी थी, लेकिन 'कल्याणी' में भी बेदी ने यही बताने का प्रयास किया था कि वेश्या के कोटे पर सेक्स अपने भयावह रूप में ही दिखायी देता है। कल्याणी, जो एक वेश्या है, जब महीपत के सामने अपने बच्चे को लाती है तो वह एक माँ का रूप धारण कर लेती है और वेश्या को इस रूप में महीपत स्वीकार नहीं कर सकता। बेदी की धारणा है कि सेक्स-सम्बन्धी मन-बहलाव अपनी जगह ठीक है, पर सेक्स-विषयक समस्या का कोई समाधान इसके अतिरिक्त उन्हें और कोई दिखायी नहीं देता कि पुरुष और नारी एक 'जोड़ा' बनाएँ और बच्चों की ज़िम्मेवारी निभाएँ। बेदी के यहाँ नारी और पुरुष के बीच बच्चा हमेशा मौजूद रहता है, बल्कि जहाँ केवल नारियाँ ही नारियाँ होती हैं — जैसे कि 'यूक्लिप्टस्' में तीन नारियाँ हैं बिना पुरुष के, वहाँ भी केन्द्र में बच्चा ही है, जो कभी ज़िन्दा और कभी मुरदा पैदा होता है, कभी बाप का और कभी बिन-बाप का होता है। 'यूक्लिप्टस्' का मूल-प्रतीक भी मरियम है जो कुँवारी माँ है और उसकी गोद में उसका बेटा यसूअ है। 'बबल' में एक ओर दरबारी है जो सीता को लेकर होटल के कमरे में आया है। होटल वालों को यह चकमा देने के लिए कि वह और सीता विवाहित हैं — उसने मिसरी भिखारिन का बच्चा एक दिन के लिए उधार ले लिया है। होटल के कमरे में जब बबल रोने लगता है और दरबारी उसे मारने के लिए बढ़ता है तो अर्ध-नग्न सीता उसे अपनी छाती से लगा लेती है। सीता नारी का प्रतीक है जो कि छाती के साथ बच्चा लगाए है, और यह स्थिति माँ की सत्ता का एक अनिवार्य अंग है। अपनी कहानी 'एक सिगरेट' में बेदी ने सन्तराम के विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

> "आजकल हमारे जीवन में एक नयी चीज़ आ गयी है, जिसे 'गुड टाइम' कहते हैं, लेकिन पुरुष और नारी में जो मौलिक अन्तर है उसे तुम मत भूलना। पुरुष पर कोई ज़िम्मेवारी नहीं, जब तक कि वह अपने सदाचरण और अपनी सभ्यता-वश इसे स्वीकार न करे, लेकिन नारी पर बहुत है क्योंकि बच्चा उसे उठाना पड़ता है। इसलिए संसार भर में नारियाँ न केवल परम्परानुगामिनी हैं, वरन् उनसे अनुरोध किया जाता है परम्परा-पालन का। और, यह ठीक है। उन्हें अपने-आप को ऐसे पुरुष को समर्पित नहीं कर देना चाहिए जो उसकी और उसके बच्चों की ज़िम्मेवारी स्वीकार न करे।"

इस दृष्टिकोण से देखें तो 'एक चादर मैली-सी' में 'चादर' विवाह का प्रतीक है। इस उपन्यास में भी सेक्स है, पर यह उपन्यास भी मूल रूप से विवाह का उपन्यास है और सेक्स तो उपन्यास में विवाह को सुदृढ़ और सफल बनाने का एक साधन है। नारियों,

बच्चों और वृद्धों की सुरक्षा और देखभाल के सम्बन्ध में बेदी का दृष्टिकोण आधुनिक सभ्यता की विचारधारा से बिल्कुल विपरीत है।

आधुनिक राजनीतिक स्थिति के विषय में भी बेदी के यहाँ अन्य कहानीकारों की तुलना में कहीं अधिक कहानियाँ मिलती हैं। जब राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति ऐसी जटिल, विनाशक और हास्यास्पद हो गयी कि उस पर सीधी-सादी आन्दोलनात्मक ढंग की इन्क़लाबी कहानियाँ लिखना सम्भव नहीं रहा तो उत्तेजनापूर्ण कहानियाँ लिखनेवाले बहुत से लेखक मौन साध गये। इस बिखरी हुई परिस्थिति को लेखनी-बद्ध करने की पूरी ज़िम्मेवारी अकेले बेदी ने सँभाल ली। 'चश्मे बद दूर' में बेदी ने 'सुपर पावर्स' की राजनीति और इस राजनीति के हथकण्डे बनने वाले आत्महन्ता लोगों का चित्रण कुछ ऐसे व्यंग्यपूर्ण और हास्योत्पादक रूप में किया है कि यह कहानी 'एब्सर्ड फ़ैंटेसी' का अनुपम नमूना बन गयी है। 'बोलो जनाज़ा कहाँ है' और 'हज्जाम अल्लाबाद के' कहानियाँ आजीविका-सम्बन्धी बिखराव की तस्वीरें हैं जिनके प्रमुख पात्र स्वार्थ-पूर्ण राजनीति की ज़्यादतियों और चालबाज़ियों के शिकार रहे हैं, विशेषतः, 'हज्जाम अल्लाबाद के' में उस साधारण आदमी के प्रति बरते गये उपेक्षा-भाव को अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण और हास्यास्पद शैली में प्रतिबिम्बित किया गया है जो स्वयं को हज्जामों के सामने लाचार और मजबूर पाता है, और हज्जाम भी उसे न पूरा मूँड़ते हैं, न छोड़ते हैं, बल्कि उसकी आधी हजामत बना कर उसे सदा के लिए अपना दास बना लेते हैं।

बेदी साधारण घटनाओं से मनोवैज्ञानिक तथ्यों को कलात्मक रूप मे उभारने में सिद्धहस्त हैं। जैसे 'लम्स' ('स्पर्श') में लोगों की भीड़ जमा है, क्योंकि नगर के एक धनाढ्य व्यक्ति की मूर्ति के अनावरण की रस्म अदा होनी है। लोग आपस में फुसफुसाते हैं कि इस धनी आदमी ने दान-धर्म के नाम पर परदे के पीछे कैसे-कैसे अनाचार किये हैं। मूर्ति पर से परदा हटा दिया जाता है, और भीड़ की समझ में नहीं आता कि अब वह क्या करे। चुनाँचे स्वयंसेवकों के हट जाने के बाद लोग जाकर मूर्ति को हाथ लगाते हैं। कहानी में मनोवैज्ञानिक सूत्र यह है कि घटना कोई भी हो, केवल तमाशाई के रूप में खड़े रहना और लौट जाना लोगों के भावनात्मक सन्तोष के लिए पर्याप्त नहीं है, वे कुछ-न-कुछ ले जाना और अपनाना चाहते हैं, वरना वे अन्दर से ख़ाली-ख़ाली महसूस करते हैं। मूर्ति का स्पर्श उनकी उपलब्धि है — यद्यपि जिस व्यक्ति की वह मूर्ति थी, उसकी निन्दा वह कुछ ही देर पहले कर चुके थे।

इसी भाँति 'बेकार खुदा' में बेदी ने 'आत्मविश्वास' के अभाव की मानसिकता को अत्यन्त मनोरम रूप में व्यंजित किया है। मुरारी जैन — जो कि ख़ोंचा लगाता है — समझता है कि नत्थू के फूँके से उसकी बिक्री अच्छी हुई है। धीरे-धीरे मुरारी जैन एक छोटी-सी दूकान ख़रीद लेता है और नत्थू उस दुकान में आकर पड़ा रहता है। नत्थू एक बहुत ही मोटा कुली है जिसकी नाक एक रंडी ने काट खायी थी, और वह अपनी कटी हुई नाक

पर एक गन्दा सा फ़ाहा लगाये रहता है। नत्थू बहुत ही मैला-कुचैला, निखट्टू और आवारागर्द आदमी है, पर मुरारी जैन उसे पिछले जन्म का साधु, महात्मा समझता है। उसके सभी कुकर्मों को सहन करता है और नत्थू उसकी दूकान पर बेकार खुदा की तरह पड़ा ऐंठता रहता है।

'बिल्ली का बच्चा' में एक बिल्ली का बच्चा सड़क के बीच में आकर बैठ जाता है और पूरा ट्रैफ़िक रुक जाता है। किसी की हिम्मत नहीं होती कि उसे कुचल कर निकल जाए, हालाँकि सीमा पर युद्ध छिड़ा हुआ है और लोग, बे-हिचक मारे जा रहे हैं, कहानी का वर्णन करनेवाले व्यक्ति को कोई काम नहीं मिलता। तंगदस्ती का ज़माना है, और फ़िल्म के काने डायरेक्टर ने उसे साफ़ कह दिया है कि उस जैसे आदमी को संसार में जीने की क्या आवश्यकता है — दूसरे शब्दों में, किसी का जीवन भी दूसरों की दृष्टि में सार्थक नहीं है, लेकिन रास्ते में ट्रैफ़िक जाम किये हुए बैठा हुआ बिल्ली का बच्चा जीवन के अभावपूर्ण पक्ष की अनुभूति को नकार रहा है।

'ख़ते मुस्तकीम और कौसें' (समकोण और चापें) कहानी में एक ऐसे नवयुवक की उकताहट को प्रस्तुत किया गया है जो दरज़ी की दुकान पर बैठा अपने सूट के तैयार होने की प्रतीक्षा कर रहा है। आज उसका इन्टरव्यू है। वह सूट लेने आया है, लेकिन सूट में थोड़ा काम बाक़ी है। वह बेकार बैठा हुआ उकताता है। अचानक दो लड़कियाँ दुकान में दाख़िल होती हैं और टेलर मास्टर से अपने कपड़ों की सिलाई की बातचीत करती हैं, नाप देती हैं, और नवयुवक इस मनहर दृश्य में ऐसा खो जाता है कि जब सूट लेकर वह बाहर निकलता है तो इन्टरव्यू का समय गुज़र चुका होता है।

बेदी की कला चित्रकार की कला है, और उनके चित्रकार का गुण उनकी कहानी 'दस मिनिट बारिश में' दिखायी देता है। पूरी कहानी एक ऐसा प्रभावशाली चित्र है जिस का हर विवरण मस्तिष्क पर अंकित हो जाता है। पानी बरसता है, और हम न केवल यह कि पानी बरसता देखते हैं, अपितु वातावरण की नमी अपने प्राणों में महसूस करते हैं। यह एक छोटी-सी कहानी है, जिसमें एक ग़रीब औरत राटा को बारिश में भीगता हुआ दिखाया गया है। वह अपने सुस्त बेटे को कोसती है। घर के बरामदें में दो नौजवान इस प्रतीक्षा में हैं कि हृष्ट-पुष्ट भीगी हुई राटा उनके दालान में पनाह लेने आएगी। माँ उन नौजवानों के सामने 'धरम-करम' और 'कलजुग' की बातें करती है। महायुग ब्रह्मा का एक दिन है। कलजुग चार लाख और बत्तीस हज़ार बरसों का है। और राटा की घोड़ी भीग रही है। उसकी पीठ नमी से भरकर स्याह साटन की तरह दिखायी दे रही है। अबूबकर रोड हरकत में आकर कोयले की कान में जाती हुई दिखायी देती है। बहाव क़े विपरीत एक किसान धीरे-धीरे इस ओर भीगता हुआ आ रहा है। उसके हाथों में एक बैल की रस्सी है। राटा की खपरैल गिर चुकी है। समीप ही एक सेठ के तिमंज़ले मकान का परनाला राटा की झोंपड़ी पर गुज़रने लगा है। हमारे बरामदे के सिवा और कोई निकट पनाह भी तो नहीं

है। राटा चारों ओर देख रही है। अभी कहेगी "मुझे अपने दामन में छुपा लो बाबू जी . . . . ।" यह बारिश का दामन क्या उसके लिए कम है ? राटा की सी औरत को मैं जानता हूँ। जब किसी ऐसे व्यक्ति पर सम्मान के दामन तंग हो जाते हैं, तो एक बहुत बड़ा दामन स्वतः उसके लिए खुल जाता है।

कहानी में पानी बरसता है, चित्र उभरते हैं, विचार बहते हैं – कहानी क्या है एक सुन्दर कविता है।

बेदी की कहानियाँ बड़ी रंगारंग और बहुविध हैं। बेदी किसी एक विषय से सम्बद्ध नहीं रहते। वह किसी एक तकनीक, शैली और शिल्प के साथ क़ैद होकर नहीं रह जाते। उनकी कहानियों में निरन्तर विकास देखा जा सकता है। बेदी की कहानियाँ जीवन के हर पक्ष को घेरे हुए हैं। उनके पात्रों का निजी प्रबल व्यक्तित्व है। छोटी कहानियों के पात्र प्रायः याद नहीं रहते, क्योंकि पात्र के व्यक्तित्व के विकास के लिए उपन्यास जैसे बड़े कैनवॉस की आवश्यकता रहती है। पर बेदी के पात्र हमारी स्मृति के अंग बन जाते हैं। बेदी की चरित्र-चित्रण-कला की एक विशेषता यह है कि वह विभिन्न प्रकार के पात्रों को उनके पेशों के अनुसार प्रस्तुत करते हैं। वर्ग और पेशे पर आधारित पृष्ठभूमि उन्हें अंग-प्रत्यंग-चित्रण के सुन्दर अवसर प्रदान करती है। बेदी ने अपनी कहानियों के द्वारा किसी जीवित व्यक्ति के चित्रण को थोपने का प्रयास नहीं किया। उनकी कहानियाँ जीवन की वह दृष्टि प्रस्तुत करती हैं जो खुली आँख से इन्सानों का तमाशा देखने से पैदा होती है, और सबसे ज़रूरी बात यह है कि बेदी की कहानियों में भारत की आत्मा जागती है। उनकी कहानियों में इस धरती की गन्ध, बास-सुवास बसी हुई है, और इस धरती के रीति-रिवाजों, आस्थाओं और रूढ़ियों से कहानियों में विविधता के साथ-साथ एकलयता आती है। बेदी की कोई कहानी आरोपित प्रतीत नहीं होती। किसी कहानी का सांस्कृतिक परिवेश कृत्रिम नहीं लगता। बेदी को नित्य नयी कहानियाँ सूझती हैं। उन्हें कहानियों के लिए इधर-उधर ताक-झाँक नहीं करनी पड़ती। साधारण जनता के सामान्य जीवन की ओर वह दृष्टि डालते हैं और उन्हें कहानियाँ मिल जाती हैं। यह वास्तविकता है कि ग़रीब भारत ने बेदी के दामन को बहुमूल्य कहानियों से भर दिया है।

❑

एक चादर मैली-सी

'एक चादर मैली-सी' केवल डेढ़ सौ पृष्ठ का उपन्यास है जिसे 'लम्बी कहानी' भी कह सकते हैं या 'लघु उपन्यास' का नाम भी दे सकते हैं। यह सबसे पहले 'नक़ूश' पत्रिका लाहौर में सन् १६६० में प्रकाशित हुआ और प्रकाशित होते ही प्रसिद्ध हो गया। यही नहीं, अपितु विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद भी हुए और इस पर हिन्दी में एक फ़िल्म भी बनायी गयी। इस उपन्यास पर बेदी को 'साहित्य अकादेमी' का पुरस्कार भी मिल चुका है। उपन्यास के प्रकाशित होने के कुछ समय बाद शामलाल ने 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' में इस पर एक अत्यन्त ज्ञानवर्धक समीक्षा लिखी थी, और ख़ैर-उल्-निसा मेहदी ने इस समीक्षा का अनुवाद किया जो 'सौग़ात' पत्रिका में सन् १६६३ में प्रकाशित हुआ। इस समीक्षा से कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ जिससे उपन्यास की मूलभूत विषय-वस्तु को समझने में सहायता मिलेगी :

> यह एक सामान्य देहात की कहानी है। इसमें वातावरण में लहसन, राई, अनाज, खून, पसीना और गोबर की मिली-जुली बास है। इसके लोग गन्ना काटने वाले हैं और गन्ने के खेतों की रखवाली करते हैं, अपने छोटे-मोटे कारोबार में व्यस्त रहते हैं, गालियाँ बकते हैं, शराब पीते हैं, नौजवान लड़कियों को फाँसते हैं और अपने थोड़े-से पैसों को सँभाल कर रखते हैं। इसकी औरतें ईर्ष्या और द्वेष से भरी हुई हैं और एक-दूसरे पर ताने कसती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन लोगों के मकानों के चारों ओर दीवारें नहीं हैं। हर एक जानता है कि दूसरा क्या कर रहा है।

यह कहानी एक उत्कृष्ट कलाकृति है। यही नहीं कि इसमें पेड़-पौधे सम्मिलित हैं, अपितु देवी-देवताओं का भी मानवीकरण किया गया है। यह किसी रोमानी कवि का गाँव नहीं है जो देहातियों की सादगी में विश्वास रखता है, न यह किसी क्रान्तिकारी का गाँव है। इस कहानी का गाँव एक अर्थ में 'दिल की बस्ती' है, जिसमें हर व्यक्ति उलझनों में घिरी हुई ज़िन्दगी से ख़ुशी के कुछ पल छीन लेना चाहता है। इसमें प्रेम और घृणा, दुआएँ, भय और ख़ुशी एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था हैं। हर व्यक्ति हर एक के बारे में सब कुछ जानता है। इसके बावजूद हर एक के मन में कोई राज है जो उसे कचोके देता रहता है और जिसका

निशान तक किसी को नहीं मिलता।

(सौग़ात : खास नंबर, सन् 1963)

'एक चादर मैली-सी' में बेदी की कला अपनी पराकाष्ठा पर है। इस उपन्यास में वह मानव के भाग्य का वर्णन प्रकृति के विशाल परिप्रेक्ष्य में करते हैं। पार्थिव घटनाओं के वर्णन के लिए बेदी चाँद-सितारों और सूर्य पर अपने लाक्षणिक प्रयोगों की कमन्दें फेंकते हैं। उपन्यास का आरम्भ ही इन अनुपम वाक्यों से होता है :

> "आज शाम सूरज की टिकिया बहुत ही लाल थी . . . आज आसमान के कोटले में किसी बेगुनाह का क़त्ल हो गया था और उसके खून के छींटे नीचे बकाइन[1] पर पड़ते हुए, नीचे तलोके के सहन पर टपक रहे थे। टूटी-फूटी कच्ची दीवार के पास जहाँ घर के लोग कूड़ा फेंकते थे डब्बू मुँह उठाकर रो रहा था।"

तलोका इक्का चलाता था। उसका गाँव कोटला पंजाब का एक बहुत ही छोटा-सा गाँव है जहाँ गन्ने की खेती होती है और लोग बहुत ही पिछड़े हुए और निर्धन हैं। लेकिन गाँव में देवी का एक मन्दिर है जिसके कारण यह यात्रा की जगह बन गया है, और दूर तथा पास के देहातों से जो यात्री यहाँ देवी के दर्शन को आते हैं उनके कारण तलोका और दूसरे इक्कावानों — नवाब, गुरदास, इस्माइल वग़ैरह — को इतने पैसे मिल जाते हैं कि वे अपने परिवार को दो वक़्त की रोटी खिला सकें। देवी का मन्दिर गाँव के चौधरी मेहरबानदास और उसके भाई घनशाम की हवेली के समीप ही था। दोनों भाई मिलकर एक धर्मशाला भी चलाते थे जो उनकी हवेली के बग़ल में ही थी। यात्रियों को तलोका इसी धर्मशाला में पहुँचाता जो चौधरी मेहरबानदास की अय्याशियों का अड्डा भी थी।

देवी का मन्दिर गाँव में कैसे बना, इसके सम्बन्ध में यह दन्तकथा प्रसिद्ध थी कि "देवी भैरों के चंगुल से बचती-बचाती इस गाँव में आ निकली थी और इस जगह, जहाँ अब एक मन्दिर खड़ा है, घड़ी-दो घड़ी विश्राम किया था, और फिर भागती हुई जाकर सामने स्यालकोट, जम्मू आदि की पहाड़ियों में गुम हो गयी थी . . . . अब भी किसी धुली हुई सुबह को कोटले से उत्तर-पश्चिम की ओर देखा जाए तो दूर क्षितिज पर किसी डाची का कूबड़-सा दिखायी देता है . . . . वही वैष्णो देवी का पहाड़ है।"

देवी, शिव, शक्ति और भैरों के जिन मिथकों की बेदी लाक्षणिक शैली में चर्चा करते हैं, उनकी व्याख्या करते हुए डॉ. गोपीचन्द नारंग लिखते हैं :

> "देवी के दो कन्धे हैं — जमा और घटा। 'जमा' की सत्ता में वह पार्वती है, उमा या गौरी है, नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम तथा वफ़ादारी का प्रतीक है, और मातृ-वात्सल्य की एक चित्रशाला। किन्तु 'घटा' की सत्ता में वह काली है, दुर्गा है, भवानी है — रंगत में स्याह, देखने में भयानक और डरावनी, चेहरे, दाँतों हाथों से खून टपकता हुआ, और भैरों की लाश को पैरों तले दबाये हुए वह बर्बरता-पूर्वक

1. एक प्रकार की छोटी-सी घास

मुस्कराती हुई दिखाई देती है।"

भैरों की व्याख्या करते हुए डॉ. नारंग लिखते हैं :

"भैरों संख्या में एक से अधिक हैं। ये शिव अर्थात् दिव्य पुरुष के कन्धे हैं और सबके सब हिंसक और घातक। शिव की पत्नी उन्हीं के नाम से 'भैरवी' भी कहलाती है। 'एक चादर मैली-सी' में एक भैरों तो स्वयं तलोका है — झगड़ालू, क्रोधी और हिंसक। दूसरे भैरों मेहरबानदास, घनशामदास और बाबा हरिदास हैं जो साज़िश करके नवयुवती यात्रिन अर्थात् देवी की इज़्ज़त पर हमला करते हैं।"

बेदी लिखते हैं :

"तलोके ने आज जिस यात्रिन को मेहरबानदास चौधरी की धर्मशाला में छोड़ा, वह मुश्किल से बारह-तेरह बरस की होगी। देवी के पास तो अपने आपको बचाने के लिए त्रिशूल था, जिससे उसने भैरों का सिर काट कर अलग कर दिया, लेकिन इस भोली-भाली यात्रिन के पास केवल दो प्यारे-प्यारे गुलाबी हाथ थे, जिन्हें वह भैरों के सामने जोड़ सकती थी, उनसे मुक़ाबला न कर सकती थी। फिर उसकी देह — जैसे तरबूज़ के गूदे की बनी हुई, जो मेहरबान की छुरी से बच न सकती थी। शायद इसीलिए उस दिन का सूर्य क्रोध में लाल अपने रथ के घोड़ों को इधर छाँटा, उधर चाबुक — इधर छाँटा, उधर चाबुक लगाता हुआ ख़ानकाह वाले कुंए के पास, फ़ारम क़ी कपास के पीछे कहीं गुम हो गया था, और ऊपर आकाश पर दूज के मृदुल-से चाँद को निचुड़ने, पीला होने के लिए छोड़ गया . . . "

अपनी अय्याशियों के लिए चौधरी मेहरबानदास तलोके से काम लेता जो शाम के समय 'नसीबों वाले' अड्डे पर पहुँच कर इस ताक में खड़ा हो जाता कि कोई भूली-भटकी सवारी मिल जाए और वह उसे अच्छे खाने और नरम और गरम बिस्तर के लालच में ले जाकर मेहरबानदास की धर्मशाला में छोड़ दे। वस्तुतः तलोका यह सब मेहरबान और उसके भाई घनशाम ही के लिए करता था, लेकिन इस पर भी बदनामी उसकी अपनी होती। उसके हिस्से में आती भी तो एक-आध चाँप और मिट्ठे मालटे की बोतल। और, तलोके की पत्नी रानो को शराब से अत्यन्त घृणा थी। वह समझती थी कि शराब जैसी सौत नहीं दुनिया में। यात्रिन को धर्मशाला में छोड़कर तलोका जब शराब की बोतल लिये घर आता है तो रानो के साथ उसका सख़्त झगड़ा होता है। बेदी ने यह पूरा दृश्य इतने अधिक नाटकीय एवं उत्तेजक रूप में प्रस्तुत किया है कि पाठक सन्नाटे की हालत में पढ़ता चला जाता है। बच्चे सहम जाते हैं। तलोके का बाप हज़ूरसिंह, जिसकी आँखों में मोतिया उतर आया है, गालियाँ देता हुआ उठता है और तँवर पर गिरकर झुलस जाता है। रानो तलोके के हाथ में अपनी बत्तीसी गाड़ देती है और तलोका भयावह रूप धारण कर रानो को बार-बार दीवार के साथ मारता है और रानो की बड़ी बेटी चिल्लाती है, "मार डाला, माँ को मार डाला।" तलोके का छोटा भाई मंगल कहाँ तो नियन्त्रित रूप में सब कुछ देख रहा था और

कहाँ अब यकायक लपक कर उसने बड़े भाई का हाथ पकड़ लिया। तलोके ने मंगल की लोहे जैसी पकड़ से अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश की, कुछ बोलने-बकने लगा, लेकिन मंगल की निगाहों में क़त्ल देखकर चुप हो गया।

दूसरे दिन तलोके ने इक्का जोड़ा और रानो को धमकाने के बाद कि वह देख लेगा कि आज वह उसे शराब पीने से कैसे रोकती है, घर से निकल खड़ा हुआ। कुछ देर के बाद इक्का सवारियों समेत घर के सामने खड़ा था और रानो सदा की तरह चार मोटी-मोटी रोटियाँ एक मैले, घी में बसे हुए, कपड़े में लपेटकर तलोके को दे रही थी। रानो ने एक नज़र इक्के की ओर देखा जिसमें बारह-तेरह बरस की एक लड़की कुछ होश और कुछ बेहोशी की स्थिति में बैठी थी और चौधरी मेहरबानदास के कारिन्दे उसे थामे हुए थे और शहर ले जा रहे थे। रानो ने हैरानी से पूछा, "कौन है ? क्या हुआ इसे ?"

"मिरगी", तलोके ने उत्तर दिया, "जो हर औरत को पड़ती है, रात तुझे भी तो पड़ी थी और जिसका इलाज जूता है।"

अभी दोपहर भी नहीं हो पायी थी कि रानो ने देखा कि लोग उसके घर की ओर देख रहे हैं और आपस में फुसफुसा रहे हैं। रानो की प्रसन्नता की सीमा न रही जब उसने चौधरी मेहरबानदास, उसके भाई घनशामदास को हथकड़ियाँ लगे बाज़ार में गुज़रते देखा, लेकिन साथ में अठारह-उन्नीस बरस का एक नवयुवक भी था जिसके कपड़े खून से तर थे। उसके मुँह, सिर, हर जगह पर खून ही खून दिखायी दे रहा था और वह कुछ होश और कुछ बेहोशी की स्थिति में हवलदार के सहारे आगे बढ़ रहा था। रानो बोल उठी, "शंकर ! हे देवी माँ ! आज तूने सुन ली मेरी . . . आज का दिन धन्य हो गया मेरे लिए।"

तभी तलोके का इक्का दिखायी दिया, लेकिन इसे गुरदास चला रहा था। इक्के के अन्दर कोई लेटा हुआ था। सवारियों ने मिलकर उसे उतारा। पास लाए और मुँह पर से कपड़ा हटाया तो रानो एकदम चिल्लायी, "नहीं . . . " और फिर अन्दर की ओर भाग गयी।

तलोके का क़त्ल हो गया था। ख़ानक़ाह वाले कुँए के समीप उस कमसिन यात्रिन के बड़े भाई ने उसे पकड़ लिया था और उसकी गले की नस में दाँत गाड़ दिये थे, और उस समय छोड़ा जब उसके शरीर में खून की एक भी नमकीन बूँद न रही थी।

जिस समय लोगों ने उसे पकड़ा वह नवयुवक हिंस्र स्थिति में आँखें फैलाए दोनों हाथों को ऊपर उठाए मन्दिर के कलश की ओर देखता हुआ एक आक्रोश, एक धर्मोन्माद की स्थिति में चला जा रहा था, "तेरे निमित्त . . . हे देवी माँ ! . . . तेरे निमित्त !"

तलोके की मृत्यु के बाद घर की ज़िम्मेवारी मंगल पर आन पड़ी, पर मंगल तलोके के जीवन-काल में भी अक्खड़, बेपरवाह और उत्तरदायित्व-शून्य व्यक्ति था। उसने तलोके का इक्का तो सँभाल लिया, बग्घी पर साज़ लादना तो सीख लिया, लेकिन अपने ऊपर

घर की ज़िम्मेवारी का जूआ न पड़ने दिया। आय पहले से भी कम हो गयी। जीवन में अचानक चौंक कर जागा हुआ मंगल भावनाओं और काम वासना के जंगल में खो गया। . . . . जेहलम अराइन की छोटी बेटी सलामते से उसकी आँख लड़ गयी।

इधर हज़ूरसिंह की हड्डियों तक में पानी पड़ गया था। वह चारपाई पर बैठा बुढ़िया को गालियाँ सुनाता रहता। जिन्दाँ का व्यवहार रानो के साथ पहले भी अच्छा नहीं था, पर तलोके की मृत्यु के बाद तो 'उठते जूता, बैठते लात' वाला मामला था। घर में खाने को भी कुछ न होता। 'बड़ी' ने कुछ चावल उबाले थे, लेकिन भूखी रानो इन्हें थाली में डाले, बिना नमक-मिर्च के, सूखे ही निगल गयी। सास-ससुर तो एक ओर – उसने अपने बच्चों को भी न पूछा था, और अब जिन्दाँ उसे धक्के दे-देकर बाहर निकाल रही थी और रानो पत्थर बनी मार खा रही थी। तभी मंगल सलामते के इश्क़ का नशा लिये घर में दाख़िल हुआ, और जिन्दाँ के हाथ रोकते हुए कहा, "ताई ! क्यों तू इस ग़रीब के साथ ऐसा सलूक करती है ? क्यों इसे हर रोज़ मारती, धक्के देती है ? आख़िर कहाँ जाएगी बेचारी ?"

यह सुनकर, जिसे अपने पति के मरने पर रोना न आया था बिलख-बिलख कर रोने लगी। वह रो रही थी और कह रही थी, "मैं क्यों जाऊँ ? . . . . क्या नहीं किया मैंने ? . . . इस घर के लिए बेटे नहीं जने, या बेटी नहीं जनी ?"

लेकिन रानो अन्दर-ही-अन्दर महसूस कर रही थी कि मेरा इस संसार में कोई नहीं – और इसी हौल में वह सब के हिस्से का खा गयी थी। अब उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस घर में रहे भी तो कैसे ? बच्चे अब पल चुके थे, बड़े हो चुके थे और क़ायदे से वह तलोके के थे – इसके थोड़े ही थे ? सास-ससुर, गाँव-पंचायत के लोग ले जाने भी देते तो वह इनको ले कर कहाँ जाती ? फिर . . . रानो यही समझने लगी थी कि जिस औरत का पति मर जाए उसे उसके घर में रहने का कोई अधिकार नहीं।

उसकी यह दशा देखकर एक सुबह उसकी सहेली चन्नो आयी। उसे अपने घर ले गयी। साग के साथ मक्की की रोटी खिलायी और फिर उसे समझाने लगी, "यह जिन्दाँ बन्दी[1], यह सास तेरी, तुझे जीने न देगी, इस घर में बसने न देगी। यहाँ रहने का एक ही तरीक़ा है और वह यह कि तू मंगल से शादी कर ले, चादर डाल ले उस पे , . . . ।" "यह नहीं हो सकता", रानो ने कहा और उसके शरीर पर कँपकँपी छाने लगी। "मंगल बच्चा है, मैंने उसे बच्चों की तरह पाला है। आयु में वह मुझ से कुछ नहीं तो दस-ग्यारह बरस छोटा है।"

लेकिन चन्नो ने पूरनदेई से बात की, पूरनदेई ने अपने पति ज्ञानचन्द से, और ज्ञानचन्द ने, जो सरपंच था, पंचायत और हज़ूरसिंह की भाटिया बिरादरी से बातचीत शुरू की। ज्ञानचन्द सोचता था – यूँ भी गाँव में आयी हुई औरत बाहर क्यों जाए ? इधर-उधर

1. बन्दा (आदमी) पुंलिंग, बन्दी (औरत) स्त्रीलिंग

क्यों झाँके ? हमारे देस पंजाब में जहाँ औरतों की कमी है क्यों मरदों से उनका अधिकार छीना जाए ? क्यों एक औरत को बेकार सड़ने दिया जाए ?

इधर रानो की 'बड़ी' भी जवान हो चुकी थी। कुछ ग़रीबी के कारण और कुछ जान-बूझकर रानो उसे फटे-पुराने, तेल और बसाँद में रसे-बसे कपड़ों में रखती। बाल बनाने की बजाय बखेर देती, ताकि उस पर किसी की नज़र न पड़े। रानो 'बड़ी' की जवानी को देखकर काँप उठी — "इस बे-बाप की बेटी का अन्त बुरा है। जिस दिन किसी दुश्मन की इस पर नज़र पड़ गयी, यह कहीं की न रहेगी।"

बड़ी को देखने के लिए क्या बल्कि ख़रीदने के लिए कुछ लोग आए। घर में न मंगल था, न रानो। जिन्दाँ ने माँग तो हज़ार रुपए की की, लेकिन सौदा साढ़े पाँच सौ पर तय हुआ। जब रानो आयी तो जिन्दाँ उसकी 'लीपो पोतियाँ' करने लगी। लेकिन बड़ी ने उसे सब कुछ बता दिया। यह सुनते ही रानो उस कुड़क मुर्ग़ी की तरह बन गयी जो अपने अण्डों और बच्चों को बचाने के लिए शिकरे और बाज़ पर भी झपट पड़ती है।

"हाय अब मैं बेटी को बिकते देखूँगी। मैं तो केवल कुछ लेकर नहीं आयी थी तो यह दुर्दशा हुई — यह तो बिक जाएगी . . . और वह बात-बात पर इसकी हड्डियाँ तोड़ देंगे, नोच-नोच खाएँगे, कहेंगे तुझे ऐसे ही तो नहीं ख़रीद कर लाये हैं, दाम दिये हैं. . । दिवंगत तलोके के जीते जी अन्तिम यही हथियार था रानो का, 'दिया तो नहीं दिया — लिया तो कुछ नहीं। ब्याह कर लाये हो, ख़रीद के तो नहीं लाये।' — और यह बेटी मेरी बिक जाएगी !"

फिर रानो सोचती है — घर में खाने को कुछ नहीं, बड़ी को कैसे ब्याहेगी। एक पल के लिए उसे विचार आता है — आज मेहरबानदास चौधरी होता, एक ही रात में बेटी का जहेज़ तैयार कर लेती, लेकिन बेटी को कभी न बताती कि तेरे सुहाग के लिए एक रात माँ ने अपना सुहाग लुटा दिया। आख़िर बेचना ही है तो एक ही बार साढ़े पाँच सौ में क्यों — क्यों न मैं इसे लेकर शहर निकल जाऊँ और थोड़ा-थोड़ा करके बेचूँ। लाहौर में सैकड़ों, हज़ारों बाबू लोग फिरते हैं जो कुछ देर के दिल-बहलावे के लिए पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस रुपए दे जाते हैं। खाने को चंगी-चोखी मिलेगी। पहनने को रेशम—खीन खाब[1] थोड़े ही दिनों में रुपयों और कपड़ों से सन्दूक भर जाएँगे . . . , तभी ज़न्नाटे से एक थप्पड़ की आवाज़ सुनायी दी जो रानो ने स्वयं ही अपने मुँह पर मार लिया था . . . , और फिर वह पूर्ववत् एक अनजाने भय से काँपने लगी।

उसी समय ज्ञानचन्द, केसरसिंह, जग्गो, दुल्ला, करमदीन और गाँव के दूसरे आदमी चले आये और आकर हज़ूरसिंह के पास बैठ गये। जिन्दाँ को भी बुलवा लिया गया और रानो के चादर डालने की बात यूँ छेड़ दी, जैसे यह भी झगड़ा है, जिसका निर्णय पंचायत को करना चाहिए। हज़ूरसिंह ने समझा — इस उम्र में जब कि वह मरने के समीप है

1. किम्ख़ाब (बढ़िया रेशम)

— पंचायत और बिरादरी के लोग उसकी बे-इज़्ज़ती करने, उसे आख़िरी ठोकर मारने आए हैं, लेकिन जिन्दाँ 'नारी की तीव्र बुद्धि' से एकाएक बात की तह तक पहुँच गयी, बल्कि इससे भी कहीं दूर आगे, बहुत आगे, निकल गयी। इतना समीप, इतने पास का ध्यान उसे पहले क्यों न आया ? . . . हाँ, हाँ, आया था, लेकिन तब बड़ी कितनी छोटी थी। अब रानो फिर उसकी बहू हो सकती है और बड़ी उसकी पोती। — और जब हजूरसिंह ने पंचों की ओर देखकर आँखें फड़फड़ाईं तो बुढ़िया दाँत निकाल कर उसकी ओर बढ़ी, "तू बीच में मत बोला कर बुड्ढ़े ! न मरे, न जान छोड़े। जानता भी है क्या-क्या 'इन्साफ़' हो रहा है इस दुनिया में . . ., मगर तू है कि इस जनम का अन्धा तो अगले जनम का भी अन्धा।"

जब पंच के आदमी चले गये तो रानो बिफरी हुई बाहर निकली, "तू तो बड़ी के ब्याह की बात करने जा रही थी फाफाँ[1], बीच में मेरा मुरदा क्यों निकाल बैठी ? शरम है तो कुछ खा मर। हे देवी माँ ! यह जोहड़ के गदले पानी में डूब-डूब मरे, ऊपर से आटे वाली मसीन 'कू-कू' करे।"

तभी कोई हाथ रानो के बालों पर पड़ा और वह उलटती हुई दीवार के पीछे कूड़े के ढेर पर जा गिरी। सामने चन्नो खड़ी थी, "हम तेरे भले की करें, कुतिये ! और तू फैलती जाए।"

"नहीं चन्नो, नहीं", रानो ने उसके सामने दुखड़ा रोते हुए कहा, "वह बच्चा है, मैंने कभी उसे इन नजरों से नहीं देखा।"

चन्नो बोली, "देख, तुझे इस दुनिया में रहना है कि नहीं रहना ? इस पेट का नरक भरना है कि नहीं भरना ? अपनी इस शरम को ढाँपना है कि नहीं ढाँपना ? बड़ी आयी है नजरों वाली !"

जब जिन्दाँ ने मंगल से बात की तो मंगल 'अलिफ़' हो गया, "नहीं, यह नहीं होगा, कभी नहीं होगा, यह तो क्या, लाट अरवन, जार्ज पंजुम भी आ जाए तो मैं कभी न करूँ। मेरी माँ के बराबर उसकी उम्र है।" उधर बड़ी भी नाराज़ थी, "यदि माँ ने यह सब किया तो मैं कुछ खा मरूँगी।" लज्जा, घृणा और मनोमालिन्य से उसका चेहरा सूज रहा था।

पंचों द्वारा निश्चित की गयी तिथि आ पहुँची। आँगन में पनीसी की मैली-सी चादर तनी थी, जिसके नीचे कुछ घड़े रखे थे। मंगल को ज़बरदस्ती पकड़ कर लाये थे और खोली के अन्दर चारपाई से बाँध दिया था। जब उसे पुरोहित के सामने लाने गये तो मंगल ग़ायब था। सात आदमी हाथ में लट्ठ और गण्डासे लिये बाहर लपके। चादर तले बैठी और रोती हुई रानो ने यह सब देखा और बेहोश हो गयी। मंगल कपास के खेत के बग़ल में एक तंग और अँधेरे 'गढ़' में बैठा फटी-फटी आँखों से बाहर देख रहा था। लोग आकर सामने खड़े हो गये। मंगल कोठड़ी में दो हाथों के बल झुका तथा हिंस्र रूप में सबको

1. मक्कार

देखता हुआ सचमुच एक जंगली सूअर मालूम हो रहा था। मंगल की देह काँपने लगी, और लोगों के दिल धक्-धक् करने लगे। जिसके हाथ में लाठी थी लाठी और जिसके हाथ में जूता था जूता मंगल पर बरसाने लगा। मंगल को बालों से पकड़ कर खेतों और खलिहानों के बीच घसीटा जा रहा था।

"अजब-सा दूल्हा था। बाल बिखरे हुए और सिर पर पगड़ी नहीं . . . हाथ में कुन्द सी किरपान, सेहरों के स्थान पर झाड़ियां और काँटे, केसर के छींटों के स्थान पर कीच के लोदे, आँखों में प्रणय के उन्माद के स्थान पर घृणा, लज्जा और अपशंका के आँसू और गदलापन, और अजीब सी बरात जैसे शिव जी पार्वती को लेने आये हों – गले में रुद्राक्ष की मालाएँ और साँप, मुँह में धतूरा और भाँग, कमर में लँगोट, और काँधे पर मृगछाला, और हाथों में त्रिशूल, बराती – बन्दर और लंगूर, शेर और चीते और हाथी . . . । उस पर शहनाई के स्थान पर एक विचित्र प्रकार की—क्षीणता, दुरभिलाषा, हिंस्र वृत्ति और वासना पैदा करने वाली – कुत्ते-मक्खी की भिनभिनाहट और आटे की मशीन की कू . . . कू . . . कू . . . कू।"

मिलन की इस रात को रानो एक बहन, पत्नी और माँ की तरह मंगल के ज़ख़्मों पर सेंक करती रही। सुबह रानो उठी। जिन्दाँ से भण्डारे की चाबियाँ लीं, ताकि मंगल के ज़ख़्मों पर लगाने के लिए हल्दी लाए। बच्चे बरामदे में आधे नंगे, आधे ढके हुए सो रहे थे। रानो ने बारी-बारी सबका मुँह चूमा और उनके बाजुओं और टाँगों पर अड़ी हुई चादरें खींच-खींच कर उनके शरीर को ढाँपा, लेकिन जब रानो बड़ी के पास पहुँची तो वह जाग रही थी। इस से पहले कि रानो उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती, बड़ी ने अपने बड़े-बड़े नाखूनों से माँ का मुँह नोच लिया और बोली, "जा तू . . . उसी से मुँह काला करवा।" रानो पर पहले क्या कम गुज़री थी कि इस पर बेटी ने भी मुँह नोच लिया। वह तो बड़ी को यह भी न कह सकती थी, "बेटी ! तेरे ही लिए तो मैंने यह सब किया है, और तू, और तू भी ?"

चन्नो ने सुबह आकर जब रानो से पूछा कि रात कुछ हुआ या नहीं, तो रानो ने कहा, "तू जो कहती है चन्नो ! मुझे इसकी ज़रूरत नहीं . . . मैं तो तन ढाँपने के लिए दो कपड़े माँगती थी भैणां[1] ! . . . पेट में डालने के लिए दो रोटियाँ . . . , पता नहीं वाहेगुरु परमात्मा को क्या मंजूर है ? देवी माँ क्या चाहती है ? वह (मंगल) अब फिर चला गया है कहीं।"

ज्यूँ ज्यूँ दिन बीतने लगे, गाँव की औरतें रानो को डाँटने-डपटने लगीं और वह सोचने लगी – शायद ये ठीक ही कह रही हों। मंगल से उसका सम्बन्ध अनिश्चित स्थिति धारण करता जा रहा था। उसे अपने और अपने बच्चों के भविष्य का भय होने लगा। वह मंगल को कुछ कह भी न सकती थी। उस पर इसका अधिकार ही क्या था, . . नहीं, नहीं, अधिकार तो था . . . पंचायत की उपस्थिति में, गाँव के सब मर्द-औरतों की गवाही

1. भगिनी, बहिन

में, उसने मुझ पर चादर डाली थी। सोचें तो हक़ है भी और नहीं भी। चादर का क्या है ? ढाई-तीन गज़ का कपड़ा ! ऐसा कहें तो शादी के फेरे भी क्या हैं ? यह सब ठीक है, नहीं, कुछ भी ठीक नहीं। तलोका भी तो था। उससे वह इतनी भयभीत न रहा करती थी। जो मुँह में आता धड़ल्ले से कह डालती। चाहे बाद में मार ही खाती। मैं इसे क्यों नहीं कुछ भी कह सकती ? — बहुत दिनों तक सोचते रहने के बाद रानो समझ गयी कि वह मंगल को क्यों कुछ नहीं कह सकती। दूसरी औरतें जो अनाप-शनाप मुँह में आए बक देती हैं, दिन छल्ला, रात ज़ेवर कुछ-न-कुछ माँगती ही रहती हैं और उसे लाके देना पड़ता है।

आख़िर रानो स्थिति को बदलने पर तैयार हो जाती है। आज रानो मंगल को अच्छी लग रही थी। दिन में कई बार उबटन मलकर रानो ने अपनी चमड़ी को इतना नरम और चिकना बना लिया था कि उस पर से नज़र और भावनाएँ फिसल-फिसल जाती थीं। बिन्दी लगा रही थी। अख़रोट की छाल का रंग होंठों पर चला आया था और अब तक के सूखे हुए छुहारों की बजाए वह रसभरियों के ढेर मालूम होने लगे थे। मंगल तो सलामती से मिलने के लिए नहा-धो कर तैयार हुआ था। जब उसने अपनी कुर्ती माँगी तो रानो चौकन्नी हो गयी। उसने कहा, "कहाँ जा रहा है ?" मंगल ने कहा, "तू कौन है रोकनेवाली ?" रानो ने कहा, "नहीं, मैं तो कोई नहीं, ऐसे ही पूछा था।" यदि रानो अड़ जाती, जैसे तलोके के साथ अड़ जाती थी और कहती, "मैं न रोकूँगी तो और कौन रोकेगा ?" तो मंगल अलिफ़ हो जाता। मंगल रानो के मरियल से उत्तर से कुछ ढीला हो गया, और बात को समाप्त करने के ढंग में बोला, "जा रहा हूँ रण्डी के यहाँ।"

यह वाक्य पति अक्सर उस समय कहते हैं जब वह सचमुच रण्डी के यहाँ जा रहे हों और पत्नियाँ समझती हैं उनका पति किसी ग़लत जगह पर नहीं जा रहा, वरना वह ऐसे कहता ? लेकिन रानो को स्थिति के हर क्षण में पैदा हो जानेवाले ख़तरे ने एक ऐसी समझ दी थी जो उसकी दूसरी बहनों के हिस्से में नहीं आयी थी। एकाएक देवी से वह एक सामान्य — हाड़-माँस की — औरत बन गयी। एकदम चालाक और मक्कार, कुलटा। क्या करती ? वह विवश और लाचार थी। व्यक्ति क्षण-क्षण स्थितियों और घटनाओं से प्रभावित होता है, उनके साथ बदलता है, वरना परमात्मा ने उसे इतना बड़ा नसों का जाल न दिया होता !

मंगल ने कुर्ती निकालने के लिए ट्रंक खोला तो उसके हाथ में मिट्ठे मालटे की बोतल आयी। यह वही बोतल थी जो तलोका लाया था और अब तक ट्रंक में पड़ी हुई थी। मंगल को शराब की ज़रूरत थी, क्योंकि वह सलामते से मिलने जा रहा था, ताकि उसकी हिम्मत बढ़े। उसमें चीते की-सी लपक आ जाए — दस घोड़ों की ताक़त ! "मैं कभी-कभी वहाँ नसीबों वाले अड्डे पर लगा लेता हूँ," वह बोला। "मैं जानती हूँ", रानो ने उत्तर दिया। लेकिन मंगल उसे कहता है कि वह रानो के सामने नहीं पियेगा, क्योंकि रानो बुरा मानती है। रानो कहने जा रही थी, "नहीं, मैं क्यों बुरा मानूँगी ? मेरा अधिकार ही क्या है ?"

किन्तु अन्दर से किसी आवाज़ ने उसे रोक दिया। उसकी निगाहें एक कुलटा की निगाहें हो गयीं और वह बोली, "हाँ, तू जानता है, मुझे ज़हर लगती है।" मंगल भन्ना उठा, "यही है न तुम औरतों की बात। खाने-पीने से भी रोकती हो अपने मर्दों को।" और, वह झेंप गया। रानो खुश हो गयी। मौखिक ही सही, पत्नी और पति का सम्बन्ध स्थापित तो हो गया। और ऊपर से नाराज़गी प्रकट करते हुए बोली, "ख़बरदार, मैं न पीने दूँगी।"

बिल्कुल जैसा रानो ने सोचा था, मंगल ने बोतल मुँह से लगा दी, "मैं पियूँगा, ज़रूर पियूँगा।" रानो कहती है, "तूने तो अपने भाई को हटकाया था, बोतल तोड़ दी थी।" मंगल कहता है, "वह तो तुझ पर तरस खाया था।" मंगल ग़ट-ग़ट शराब पी रहा था और हाँपते-काँपते कह रहा था, "मैं अपने भाई की तरह नामर्द नहीं, जो एक औरत के सामने हथियार डाल देगा।" रानो और मंगल में छीना-झपटी होने लगी। मंगल ने उसे फ़र्श पर गिरा दिया और जोश में आकर उसे मारने-पीटने लगा — बिल्कुल ऐसे ही, जैसे रानो ने सोचा था। वह ऊपर उठने की कोशिश करने लगी और मंगल उसे नीचे दबाने की। इस बार जो रानो उठी तो मंगल ने उसे दीवार के साथ दे मारा। खून का एक फ़व्वारा रानो के सिर से उठा और उसकी टाँगें उसे सँभालने के काबिल न रहीं। वह ज़मीन पर पड़ी थी। आँखें बन्द और मुँह खुला हुआ। अब मंगल लज्जित था। पगड़ी फाड़ कर उसने रानो के ज़ख्म पोंछे। रानो ने कहा, "वचन दे, फिर न पीएगा। वचन दे तो मैं . . . आज मैं तुम्हें अपने हाथ से पिलाऊँगी।" मंगल के वचन देने पर रानो उठी और एक थाली में रोटी, कुछ प्याज़ और चाँपें लेकर आयी, और मंगल के गिलास में बहुत सारी शराब उँडेल दी। मंगल को विश्वास नहीं हो रहा था। रानो की निगाहें उसे जी भर कर पीने का निमन्त्रण दे रहीं थीं। मंगल ने गिलास लेते हुए कहा, "आज के बाद पियूँ तो समझो — गाय खाऊँ।"

उसने गिलास मुँह की ओर बढ़ाया तो रानो ने रोक दिया। वह बाहर गयी और थोड़ी देर के बाद एक टूटी हुई चीनी की तश्तरी में दिल की शक्ल का एक टमाटर, जो आठ भागों में कटा हुआ था, ले आयी। मंगल पीने और खाने लगा, और फिर रानो और मंगल दोनों के तपते हुए देह दिव्य आनन्द की अनुभूति में हिलोरें ले रहे थे।

किसी को यह अनुमान नहीं था कि इस बार कोटले में इतने यात्री आ पड़ेंगे। किसी को ज्ञात न था कि कोटला गाँव के घर दौलत से भर जाएँगे, और उन पर कंचन बरसने लगेगा। कबूतर मन्दिर के कलश से गाँव की गलियों में उतर आएँगे और दाना खाएँगे और उनके प्यार की 'घूँ-घूँ' चौबीस घंटे चलनेवाली आटे की मशीन की 'कू-कू' में गुम हो जाएगी, और अभी लोग आ रहे थे — नाचते और गाते, ढफ़ कूटते, नफ़ीरी बजाते —

"बचाना है तो बचा लो अम्बा जी !
पापियों के बचाने की यही बेला है।"

आज बड़ी परिक्रमा का दिन था। मंगल रानो का हो चुका था। रानो माँ बनने वाली थी। चीथड़ों में दिन गुज़ारने वाली रानो के शरीर पर नये कपड़े थे, जो मंगल की कमाई

से आये थे। चन्नो ने यह सब देखा तो मारे खुशी के नाचने लगी। मंगल दौड़ता हुआ आया। चन्नो से टकराया। गिरती पगड़ी को सम्भाला और रानो से कहने लगा, "जात्रियों में एक लड़का आया है — गभरू जवान, ज़मीनें, मकान, दुकानें, जायदाद। वह कहता है शादी करूँगा तो 'बड़ी' से, दुनिया की और किसी लड़की से नहीं।

अब औरतें घर में जमा हो रही थीं। मंगल को धक्के देकर बाहर निकाल रही थीं, गा रहीं थीं, नाच रहीं थीं, क्योंकि वे खुश थीं कि रानो का घर बस गया और वह माँ बनने वाली है। "लड़का पैदा करना री, एक और मुसीबत न खड़ी कर लेना।"

देवी माँ के दर्शनों के लिए आयी हुई पूरी परिक्रमा मंगल के घर की ओर पलट पड़ी, जैसे देवी माँ मन्दिर में नहीं वहाँ है। कोठे पर महिलाओं के ठट्ठ दिखायी देने लगे, नीचे पुरुषों के। रानो कुछ सावधानी और कुछ असावधानी से नाच रही थी। नाचती हुई महिलाओं की नज़र में संसार एक लम्बा-चौड़ा घेरा बन गया जिसके बीच पुरुष, महिलाएँ, बच्चे, वृद्ध केवल ढाँचे बनकर रह गये—फिर वे रंग के बड़े-बड़े छींटों और धब्बों में बदल गये. . . और अन्ततः एक ही रंग रह गया — सूर्य की किरणों का रंग।

बाहर कुछ और ही शोर मचा था और यह ग़ोल का ग़ोल, झुरमुट का झुरमुट कई नये रंग पैदा करता, एक-दूसरे पर गिरता-पड़ता, दरवाज़े पर, कोठों के मुंडेरों पर, कुँए के 'मन' पर पहुँच गया। ये यात्री लोग थे जो सिर झुकाए देवी की भेंटें गाते हुए आ रहे थे। ढोलक पीटते, छेने बजाते हुए देवी माँ की स्तुति गा रहे थे। वे सब-के-सब अपने-अपने पापों से मुक्त होने आ रहे थे — पाप जो हो चुके हैं, पाप जो हो रहे हैं, पाप जो होनेवाले हैं।

सबने देखा चौधरी मेहरबानदास और उसका भाई घनशाम सात वर्ष की क़ैद काट कर आ रहे थे। उनकी गरदनें झुकी हुईं थीं, और निगाहें ज़मीन पर गिरी हुईं, और उन सबके बीच एक लड़का था, जो बड़े प्रेम और श्रद्धा से देवी माँ की भेंटें गा रहा था। रानो ने दूर से इस खूबसूरत लड़के को देखा और उसकी निगाहों में स्वयंवर रच गये। मन ही मन में उसने 'बड़ी' की बाहुओं के हार उसके गले में पहना दिये और स्वयं अमर बेल बनी उससे लिपट-लिपट गयी, लेकिन जब लड़का समीप आया तो रानो रूई की तरह सफ़ेद हो गयी — "वही, यह तो वही है जिसने मेरे . . . " रानो इस अप्रत्याशित शोक से बेहोश होकर गिरनेवाली थी कि बूढ़े हज़ूरसिंह ने उसे थाम लिया, "बहू, तू किसे रोती है ? मेरी ओर देख — जिसने बेटा दिया है, सदा के लिए बेटा दिया है तब कहीं जा के एक 'बेटा'[1] पाया है।"

हज़ूरसिंह में रानो को अपने दिवंगत पिता के स्थान पर दिव्य पिता मिल गया था। वह बार बार अपना सिर उसकी छाती पर पटख़ रही थी और कह रही थी, "नहीं, . . . नहीं बापू, . . . यह न होगा, . . . हाय मेरी बेटी, . . . मैं मर जाऊँगी बापू !" उस समय

1. 'बड़ी' का भावी पति।

परिक्रमा के लिए आया हुआ जन-समूह थम चुका था और रुके हुए साँसों से एक बहुत बड़े निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि रानो 'हाँ' कहेगी तो कई संसार बस जाएँगे, और 'न' कहेगी तो प्रलय आ जाएगी।

तभी रानो को दिलासा देते हुए हज़ूरसिंह बोला, "बेटा ! यह सब क्या हो रहा है ? . . . क्यों हो रहा है ? – इसे तू नहीं जानती, न मैं जानता हूँ, न ये लोग जानते हैं। तू इसे समझने की कोशिश मत कर। . . . यहाँ तो दम मारने की जगह नहीं !"

रानो ने मुड़कर देखा – 'बड़ी' के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मानो वह कह रही थी – "माँ, यह तू क्या कर रही है ? तू न बोली तो मैं बिन-ब्याही धरती की तरह बाँझ रह जाऊँगी।" रानो ने श्वसुर के कन्धे पर से सिर उठाया और बोली, "अच्छा बापू, अच्छा।"

एकदम भेंटें शुरू हो गईं। लोग भरपूर जोश के साथ गाने, बजाने, शोर मचाने लगे, जिन के बीच रानो ने ऊपर मन्दिर की ओर देखा। सुनहरे कलशों से देवी की रूपहली मुस्कान प्रतिबिम्बित होकर रानो के चेहरे पर पड़ रही थी और उसे दीप्त कर रही थी। उसी क्षण मन्दिर में घंटियों का शोर मचा, मस्जिद से अज़ान बुलन्द हुई, और जहाँ कलश थे वहाँ अँधेरे में किसी के हाथ फैले और गरदन लटकती दिखायी दी।

एक भीति थी . . . एक आह्लाद भी, जिनमें सनसनाती हुई रानो ने अपने दोनों हाथ कलशों की ओर उठा दिये, और रोती-धोती काँपती हुई बोली, "हे देवी माँ !"

'एक चादर मैली-सी' संक्षिप्तता और यथार्थता का अनुपम उदाहरण है। बेदी ने वस्तुतः समुद्र को घट में बन्द कर दिया है। पूरे उपन्यास में लाक्षणिक प्रयोगों, प्रतीकों और मिथकों का ऐसा ताना-बाना बुना हुआ है कि यदि विवरणात्मक शैली अपनायी जाती तो प्रत्येक अंश फैलकर रेगिस्तान बन जाता। प्रशंसनीय बात तो यह है कि प्रतीक और लाक्षणिक प्रयोग – जो कि काव्यात्मक सौन्दर्य-बोध के स्रोत हैं – उस यथार्थाभिव्यंजक शैली की पथरीली और खुरदरी धरती में से फूटे हैं जो दरिद्रता में जकड़े और पिछड़े हुए ग्रामीण जीवन को चित्रांकित करने का कर्तव्य रोचक रूप में निभाती है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यहाँ जीवन ख़ानों में बटा हुआ नहीं है। ऐसा नहीं है कि सदाचरण मनोविश्लेषण से आँखें चुराता हो, और मनोविश्लेषण सामाजिकता से पल्ला बचाता हो। उपन्यास में जीवन सामाजिक, प्राकृतिक और लोकोत्तर स्तर पर 'ऐक्य' में प्रतिबिम्बित हुआ है। धार्मिक विश्वास इन लोगों के जीवन का अंग है, जो प्रकृति की गोद में सामाजिक जीवन जीते हैं। इस सामाजिक जीवन के कुछ आचारगत नियम हैं जिन्हें ये लोग स्वीकार भी करते हैं और तोड़ते भी हैं। इसलिए इनसे पाप भी हो जाते हैं, और वे पाप की सज़ा भी पाते हैं, तथा पापों से छुटकारा पाने का प्रयास भी करते हैं। महिलाएँ अनपढ़ हैं, रूढ़िवादी हैं, टोनों-टोटकों को मानती हैं, झूटे धर्मात्माओं की काम-वासना का शिकार होती हैं। ईर्ष्या और द्वेष से जली-भुनी रहती हैं। लेकिन उनमें एक ऐसी सहज दृष्टि है जो कि महिलाओं

के हिस्से में आती है, और जिसके कारण वे नारी के दुख, उसकी विवशता और उसकी क्षमता को पहचानती हैं। वे जानती हैं कि पुरुष की तुलना में वे हीन हैं, उनकी स्थिति एक पालतू पशु की-सी है, और पुरुष की दया पर जीती हैं। अपने पति को अपना बनाये रखना उनके गौरव और अस्तित्व का सूचक नहीं, वरन् उनके जीवन-यापन के लिए एक अनिवार्यता है। इस उद्देश्य के लिए वे सभी नारीगत क्षमताओं का प्रयोग करती हैं। ये क्षमताएँ जब सफल नहीं होतीं तो लोकोत्तर शक्तियों से काम लेती हैं। टोने-टोटके करती हैं। इन महिलाओं का खुदरापन, उनकी वासना भरी छेड़छाड़, गाली-गलौच, नोच-खसोट और मार-धाड़ — ये सब उनके असभ्य जीवन का सूचक नहीं, वरन् उनके अन्दर रची-बसी प्राणवत्ता की उस शक्ति का प्रदर्शक है जो कि अत्यन्त विरोधी और हिंसापूर्ण स्थितियों में भी जीवन की ज्योति को जलती रखने का अनुरोध करती है। बेदी ने इन नारियों को दयालु, द्रवणशील, एक-दूसरे के काम आनेवाली, नेक और सौम्य रूप में प्रस्तुत नहीं किया। इनमें ऐसी भावना ही नहीं है कि वे दूसरों की सहायता करें या दूसरों का दुःख अपना लें। पर वे जानती हैं कि दुख-दर्द में — जो सदा नारी के भाग्य में लिखा है, नारी को क्या करना चाहिए ? यहाँ झूठी लाज और झूठी आचारशीलता इनके आड़े नहीं आती। रानो को जीना है अपने लिए भी और अपने बच्चों के लिए भी। 'जीना' सर्वप्रमुख है। सब औरतें मिलकर रानो को जीने में सहायता देती हैं। जो विघ्न वे दूर कर सकती हैं करती हैं। अपने पतियों को समझाकर पंच को सहमत करती हैं , रानो को समझाती हैं और वह नहीं समझती तो उसे गालियाँ देती हैं, मारती हैं, पीटती हैं। यह मार-पीट आवश्यक है, क्योंकि रानो के रास्ते में जो मानसिक और भावनात्मक विघ्न हैं वे मात्र समझाने-बुझाने से दूर नहीं हो सकते। वे चाहती हैं कि जिसे रानो बेटे के रूप में देखती आयी है, उसे पति-रूप में देखना शुरू करे। यह काम आसान नहीं, और वे यह भी नहीं जानतीं कि यह मानसिक परिवर्तन कैसे पैदा किया जाए। लेकिन वे यह जानती हैं कि रानो के जीवन के लिए यह आवश्यक है, और उसे नज़र की यह तबदीली पैदा करनी ही होगी। यूँ कहिए कि जीवन की आवश्यकताओं को मानसिक और सदाचारण-सम्बन्धी विघ्नों पर हावी होना पड़ेगा। चुनाँचे उनके समझाने और मनाने के उपायों में भी सदाचरण-सम्बन्धी अथवा तर्क-विषयक अथवा मनोगत परामर्श देने के स्थान पर मारपीट और धक्का-मुक्की का अंश अधिक है। वे अधिक-से-अधिक यह कर सकती हैं कि रानो को ठीक रास्ते पर लगा दें, और इसमें वे सफल होती हैं। बाद के जो विघ्न हैं, उन्हें रानो को दूर करना होता है, और जब वे विघ्न दूर हो जाते हैं तो वे खुशी से नाच उठती हैं। उनकी गाली-गलौच ही के समान उनका नाच, और नाच की गन्दी हरकतें इसी जिजीविषा को प्रकट करती हैं जो लाख प्रतिरोधों के बीच भी अपना रास्ता बनाता है और अपने आचारगत और मनोगत आश्रय अपने-आप पैदा करता है। इस तरह 'एक चादर मैली-सी' एक अर्थ में एक समुच्चयात्मक उपन्यास है। एक ऐसी बिरादरी का जीवन प्रतिबिम्बित करता है जो अमानवीय परिस्थितियों

में भी मानवीय जीवन व्यतीत करने के यत्न को हाथ से जाने नहीं देती।

और, निःसन्देह रानो इस उपन्यास का सर्वोत्कृष्ट पात्र है। वास्तविकता तो यह है कि रानो बेदी का उर्दू-साहित्य को एक अमूल्य और सदा-बहार उपहार है। उर्दू में उपन्यास कम हैं, और उपन्यासों के ऐसे पात्र बहुत ही कम जो हमारी साहित्य-विषयक स्मृति का अंग बन जाएँ और जिनके माध्यम से हम जीवन की समस्याओं पर विचार और चिन्तन कर सकें। रानो बहुत तेज़ी से यह पद प्राप्त कर रही है। अपने मानवीय स्तर को स्थिर रखते हुए रानो अपनी हर क्षमता से बिखरती और उजड़ती दुनिया को समेटने और बसाने में लगी हुई है। वह जननी है, माँ है, शय्या की वेश्या है, और देवी है – और यह सब कुछ होने पर भी वह सदा एक बहुत ही साधारण नारी रहती है। वह अपने मानवीय स्तर और मानवीय आवरण को कहीं भी छोड़ती दिखायी नहीं देती। तलोके के सामने वह एक अधिकारिणी पत्नी के समान तन जाती है, यद्यपि उसके घर में उसके कोई अधिकार नहीं। तलोके के हाथों वह एक पशु की भाँति पिटती है, घर छोड़कर चली जाना चाहती है, लेकिन जाए तो कहाँ जाए ? घर तो यही है। अतः बेसहारा गृहस्थिन के रूप में वहीं रहती है और फिर पत्नी बनकर तलोके की वासना को ठण्डा करती है। भूखी होती है तो भूखे जानवर की तरह चावल सूखे-के-सूखे निगल जाती है। बच्चों के लिए विवाह करती है, लेकिन 'बड़ी' के लिए अब वह माँ नहीं रही, वेश्या बन जाती है, लेकिन मंगल के लिए तो वह माँ ही रहती है, जिससे मंगल दूर-दूर रहता है, और अन्ततः मंगल को अपना बनाने के लिए उसे फिर माँ और देवी के पवित्र स्थान से उतर कर वेश्या और कुलटा बनना पड़ता है। यह कुलटा फिर मंगल के बच्चे की माँ बनती है और जननी एवं देवी के स्थान को उस समय पहुँच जाती है जब वह तलोके के हत्यारे को अपने दामाद के रूप में स्वीकार करती है। रानो का सब का गुण 'अपने आप को ढाल लेना' है, जो उसके जीवन की एक (अनुकरणीय) विशिष्टता है। अस्वीकृति नहीं, बल्कि स्वीकृति रानो को एक ऐसा समुद्र बनाती है जिसमें दुःख के पर्वत डूब जाते हैं, शत्रु अपना लिये जाते हैं, और विवशता की अकेली रातों में बहाये हुए आँसू, सौन्दर्य, विस्तार और खुशियों के चमकदार मोतियों के रूप में,जीवन-रूपी-तट पर बखेर दिये जाते हैं। रानो एक 'नारी' के रूप में समाप्त होकर 'देवी' नहीं बनती, वह 'नारी' ही रहती है – बहुत ही दरिद्र, अत्यन्त दुखियारी और बहुत ही साधारण कोटि की नारी। पर अपने रचनात्मक तथा भावनापूर्ण बर्ताव के द्वारा वह अपनी हर क्षमता से जिजीविषा की अभिव्यक्ति करती है, और इसी से उसमें वह दिव्य तत्त्व उत्पन्न होता है जो प्रेम, विस्तार और सौन्दर्य का प्रतीक है। "सुनहरे कलशों से देवी की रूपहली स्मिति प्रतिबिम्बित होकर रानो के मुख-मण्डल पर पड़ रही थी और उसे दीप्त कर रही थी।"

❑

बेदी के नाटक

उर्दू में अच्छे उपन्यास कम ही सही, फिर भी मिल जाते हैं, लेकिन नाटकों का तो बड़ा अकाल है। वैसे देखा जाए तो कृशनचन्दर, सआदत हसन मंटो, इस्मत चुग़ताई, राजिन्दर सिंह बेदी सभी ने नाटक लिखे हैं, लेकिन न तो वे खेले जाते हैं, न रेडियो से प्रसारित होते हैं और न ही समीक्षाओं में उनकी चर्चा मिलती है। नाटकों की ओर ध्यान न देने का स्पष्ट कारण यही दिखायी देता है कि हमारी रुचि नाटकों की ओर इतनी उन्मुख नहीं है जितनी कि कहानियों और कविता की ओर है। अन्यथा इन नाटकों में निश्चय ही कुछ तो ऐसे हैं जिन पर समीक्षकों को ध्यान देना चाहिए था। मुमताज़ शीरीं के अतिरिक्त — जिन्होंने मंटो के नाटक 'मँझदार' पर खूब लिखा, दूसरे समीक्षकों ने नाटकों के प्रति उपेक्षा ही बरती है। दूसरा कारण यह है कि ये सब-के-सब नाटक 'रेडियाई' हैं, जो प्रायः रेडियो की नौकरी के दिनों में लिखे गये। हाँ, बेदी ने इनके प्रकाशन के समय इन्हें रंगमंचीय नाटक बनाने का प्रयास किया, पर इसमें भी उन्हें बहुत सफलता नहीं मिली। रेडियो-नाटक में जिस तरह क्षण भर में दृश्य बदलते हैं, मंच इसे सहन नहीं कर सकता। बेदी ने दृश्यों की संख्या कम करने की कोशिश नहीं की। रेडियो नाटक को, रंगमंचीय नाटक में रूपान्तरित करने में उन्होंने केवल इतना किया कि रेडियो के श्रव्यता-सम्बन्धी निर्देशों को उन्होंने रंगमंच के लिए उपयोगी रंग-निर्देशों में बदल कर नाटक को काफ़ी ठोस और प्रत्यक्ष बना दिया। परिणामतः, रंगमंच पर इनके खेले जाने की सम्भावना बढ़ गयी। इससे यह लाभ भी हुआ कि इन्हें पढ़ते समय अब अधिक आनन्द आता है।

बेदी के ये नाटक उनकी रेडियो में नौकरी के दिनों में लिखे गये, और दो संग्रहों — 'बेजान चीज़ें' और 'सात खेल' — के रूप में प्रकाशित हुए। स्वतन्त्रता के बाद बेदी ने कोई नाटक नहीं लिखा। कारण स्पष्ट है कि फ़िल्मी दुनिया में प्रविष्ट होने के बाद नाटक-लेखन के प्रति रुचि की पूर्ति फ़िल्मों से होती रही। रंगमंच के लिए तो उन्होंने पहले भी कोई नाटक नहीं लिखा था, फ़िल्में बनाते हुए वह रेडियो के लिए क्यों लिखते ?

बेदी ने कुल मिलाकर ग्यारह नाटक लिखे हैं। इनमें से कुछ मनोरंजनात्मक हैं, कुछ गम्भीर और कुछ प्रयोगात्मक। कम ही नाटक ऐसे हैं जो समय के अपव्यय से बच गये हैं, अन्यथा अधिकतर ऐसे हैं जो अपनी मनोरंजकता खो चुके हैं। उदाहरणार्थ — 'कार

की शादी', 'अब तो घबरा के', 'बेजान चीज़ें' ऐसे नाटक हैं जिनका विषय और अभिव्यक्ति दोनों पुराने हो चुके हैं।

'कार की शादी' एक ऐसे नवयुवक से सम्बन्धित नाटक है जो इस छलावे का शिकार है कि उसकी मंगेतर और उसके घर वाले उसे व्यक्तिगत रूप में पसन्द करते हैं जबकि उसके मित्र का दावा है कि उनका आकर्षण उसकी सम्पत्ति और कार के कारण है। चुनाँचे, सच्चाई की परीक्षा लेने के लिए वह एक दिन बिना कार के जाता है और बातों-बातों में बताता है कि उसके पिता का व्यापार ठप्प हो चुका है। कार बिक चुकी है और अब वह स्वयं विवशता-वश कोई साधारण-सी नौकरी करनेवाला है। यह सुनकर लड़की और उसके घर वालों की चाहत पर ओस पड़ जाती है, और वह शादी की तिथि निश्चित करने में टालमटोल करने लगते हैं। इस नाटक में मित्र के साथ बातचीत में कोई अनायास भाव नहीं दिखाया गया — ऐसा प्रतीत होता है कि यह बातचीत भावी परिस्थिति की तैयारी के लिए एक पृष्ठभूमि का कार्य कर रही है। उधर लड़की के घर वालों के साथ जो बातचीत होती है उसमें भी नाटकीय व्यंजकता न दिखाकर बदले हुए हालात से उत्पन्न प्रतिकूल स्थिति को सपाट तरीके से प्रस्तुत कर दिया गया है।

'अब तो घबरा के' में बेदी ने एक ऐसे बैंक क्लर्क के जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है जो काम के बोझ तले दबा जाता है। उसकी पत्नी बीमार है, पर वह उसकी भी सुध नहीं ले सकता। उसे एक दिन की भी छुट्टी लेना मुश्किल है। काम की थकान से चूर कुर्सी पर बैठे-बैठे ही उसकी आँख लग जाती है, और वह स्वप्न में देखता है कि अन्ततः मृत्यु ने उसे काम से छुटकारा दिला दिया है, और वह स्वर्ग में पहुँच गया है। वहाँ सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) और मृत्यु के देवता (यमराज) — उसके बैंक-सम्बन्धी अनुभवों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे आत्माओं का हिसाब-किताब रखने के काम पर लगा देते हैं। वहाँ भी उस पर इतना काम लाद दिया जाता है कि उसे साँस लेने की फ़ुरसत नहीं मिलती। बेचारे क्लर्क को मरने के बाद भी चैन नसीब नहीं होता। जब उसकी आँख खुलती है तो फिर वह अपने आप को बैंक और उसके शोर-शराबे में घिरा पाता है। पर स्वर्ग के अनुभव के बाद उसे अब बैंक का काम-काज उतना बुरा मालूम नहीं होता। पहले तो इसलिए कि यहाँ स्वर्ग जैसा बन्धन और अनुशासन नहीं। यहाँ ग़लतियों को ठीक किया जा सकता है। नियमों में उलट-फेर भी संभव है, और सबसे बड़ी बात यह है कि इस संसार में आदमी यदि घबरा जाए तो कम-से-कम मर तो सकता है।

विषय-वस्तु मनोरंजक है, पर बेदी इसकी नाटकीय संभावनाओं को पूरे रूप में नहीं ला सके हैं। वस्तुतः, नाटक को इस प्रकार की घटनाओं से जुड़ा हुआ होना चाहिए था जो व्यंग्य तथा हास्य से भरी हुई हों। बेदी ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत नहीं कर सके, अर्थात्, नाटक में — जो कि एक मनोरम साहित्य रूप है — हास्य का अंग दुर्बल है। क्लर्क पर काम का बोझ भी इसी तरह दिखाना चाहिए था जो कि उसके लिए थकान और दर्शकों

के लिए मनोरंजन का कारण बनता। पर संभवतः रेडियो-नाटक के लिए इतना ही दिखाना पर्याप्त होता है, अन्य कमियों को वह आवाज़ों और संगीत के द्वारा पूरी कर लेते हैं। जो हो, इन नाटकों में जिस चीज़ की कमी महसूस होती है वह संवादों की चुस्ती और आकस्मिकता है, जिनके द्वारा कामेडी में हास्य-रस और व्यंग्य के तत्व उत्पन्न हो जाते हैं।

'बेजान चीज़ें' नाटक में दिखाया गया है कि कैसे डॉ. किदवई और डॉ. मिस सलमा सुलताना एक दूसरे के समीप आते हैं, विवाह करते हैं, दोनों के बीच झगड़ा होता है, दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं, एक-दूसरे की कमी महसूस करते हैं और अन्त में दोनों में मिलाप हो जाता है। कहानी में कोई नयापन नहीं है, पर जो चीज़ नाटक में नयापन लाती है वह यह है कि दोनों के आपसी सम्बन्धों को बेजान चीज़ों — जैसे क्लीनिक के साइन-बोर्ड, चाय की प्याली, पाउडर लगाने का पफ़, कोट, जूतों के तस्में, फ़ोटो-फ्रेम और झाड़न आदि — के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राब गरये से बहुत पहले बेदी ने चीज़ों के द्वारा सम्बन्ध और मानसिक स्थिति को वर्णित करने का प्रयास किया, पर वह सफल इसलिए नहीं हो सके कि इस विषय-वस्तु पर कहानी लिखने के स्थान पर उन्होंने नाटक लिखा, जिसमें पात्रों का संवाद इन चीज़ों पर छा गया। यदि बेदी कहानी लिखते तो ये बेजान चीज़ें अपनी मूक वाणी से पात्रों की मनोदशा का वर्णन करतीं।

'आज' नाटक का घटना-स्थल एक रेस्तराँ है औस समय सन् 1944 की एक रात। रेस्तराँ में दो कैबरे नर्तकियाँ हैं — एक अमरीकी और एक अंग्रेज़, जो जीवन और मृत्यु का कैबरे नाच प्रस्तुत करती हैं। जीवन भड़कीले लिबास में है, और मृत्यु काले लम्बे चोग़े में। रेस्तराँ में अन्य दर्शकों के अतिरिक्त एक प्रोफ़ेसर ठाकुर हैं जो अपने-आप को 'गाँधी' से कम नहीं समझते। दो पियक्कड़ भारतीय छात्र हैं। कम्यूनिस्ट शंकर है और सफ़दर नामक कलाकार जो ग्रामोफ़ोन कम्पनी में नौकरी करता है। ये सब लोग कैबरे देखते हैं, जिसमें मृत्यु, बहुत सुन्दर और कलात्मक ढंग से, जीवन को अपने काले चोग़े में दबोच लेती है। कैबरे समाप्त होने के बाद सब शराब पीते हैं, और अपना-अपना ग़म ग़लत करते हैं। नाटक के लम्बे संवाद अपने आप पर रहम खानेवाली आत्मकथाएँ बन जाती हैं और इन आत्मकथाओं में उन आदर्शवादी नवयुवकों का चित्र उभरता है जिन्होंने निजी और पारिवारिक विवशताओं के अधीन अपने आदर्शों को तिलांजलि दी, और नौकरियाँ करके जीवन से समझौता कर लिया। अब ये लोग सद आचरण न कर सकने की भावना के शिकार हैं। इनके जीवन में कोई आदर्श नहीं रहे। अपने देश के भाग्य के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। कोई जीवन को अपने पास बुलाता है तो कोई मृत्यु को, जो कैबरे नर्तकियों के रूप में उनके पास आती हैं और नवयुवकों के सम्बन्ध में निर्णय करती हैं कि उन्हें कौन-सी चीज़ की आवश्यकता है — जीवन की या मृत्यु की। यह नाटक आदर्शों की पराजय, आचरण-हीनता, दिशा-हीनता और वंचना का नाटक है। निराशा के अँधेरे वातावरण में आशा की किरण नाटकीय परिस्थिति से नहीं, अपितु नाटककार की लेखनी

से उभरती है, जो प्रो. ठाकुर के माध्यम से भारत की आत्मा, उसके अतीत, उसकी संस्कृति और उसके जन-साधारण के रीति-रिवाज़ों से सम्बन्ध पैदा करने की शिक्षा प्रदान करती है। जिस युग में बेदी ने यह नाटक लिखा, वह युग भारतीय नवयुवक के लिए रोमानी बेचैनी और मानसिक दुरवस्था का युग था। बेदी युग की इस परिस्थिति को नाटक के रूप में ढालने में सफल हुए हैं। पुराने आदर्शों की खोज, जीवन की पराजय, अपने देश के रीति-रिवाज़ और जनसाधारण से विमुखता, युद्ध, दासता, जगमगाते रेस्तराँ, कैबरे नृत्य, मदिरा-पान – ये सब मिलकर नाटक को एक ऐसी रोमानी और साथ ही सामंजस्यपूर्ण स्थिति प्रदान करते हैं जिसके संचारण-प्रसारण के लिए रेडियो एक समुचित माध्यम है।

'रूहे इन्सानी' ('मानवीय आत्मा') नाटक भी एक अर्थ में 'आज' ही की भाँति राजनीतिक वातावरण का नाटक है। यह नाटक जर्मन नाटककार 'अरनेस्ट टॉलर' में बेदी की रुचि का प्रदर्शन है। अरनेस्ट टॉलर में बेदी को एक ऐसा कलाकार दिखायी दिया जो सर्वजनसखा, स्वतन्त्रता-प्रेमी, और क्रान्तिकारी था, और जो जर्मन फ़ासिज्म की बर्बरताओं का शिकार हुआ। युद्ध के दिनों में एक अन्योक्ति-लेखक से सम्बन्धित नाटक को रेडियो भला कैसे प्रसारित करता – संभवतः इसीलिए बेदी ने अरनेस्ट टॉलर का नाम निकालकर उसके स्थान पर 'रूहे इन्सानी' रख दिया। इस प्रकार यह नाटक एकाएक जीवनी-सम्बन्धी नाटक की ठोस सतह को छोड़कर सर्व-साधारणता, अपितु अमूर्तता के वातावरण में घुलमिल गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि न तो कोई संवेदनशील लेखक एक पात्र का ठोस व्यक्तित्व धारण कर सका है, और न ही जेल के कर्मचारी-गण और क़ैदी 'रूहे इन्सानियत' की अमूर्तता से कोई सम्बन्ध स्थापित कर सके हैं। वे पीड़ा लेखक को देते हैं, पर लगता है कि पीड़ा लेखक नहीं 'रूहे इन्सानियत' झेल रही है। स्पष्ट है कि पीड़ा सहन करने की क्षमता 'रूहे इन्सानियत' में एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है। अतः पीड़ा अपना महत्त्व खो बैठी है। बेदी ने नाटक में पीड़ा पर पूरी शक्ति ख़र्च कर दी है, और इसीलिए एक अत्याचारी राज-व्यवस्था और स्वतन्त्र चिन्तन के बीच नाटकीय संघर्ष को जिस भाँति प्रस्तुत करना चाहिए था, नहीं कर सके। जिस कोठरी में लेखक क़ैद है उसके सामने बने दफ़्तर में लगे हुए कैलेण्डर और घड़ी को देख-देखकर लेखक अत्यन्त मानसिक यन्त्रणा का अनुभव करता है। वह नहीं चाहता कि क़ैद में उसे समय की अनुभूति हो। और, इस यन्त्रणा से उसे मुक्ति दिलाने के लिए उसके साथ रखे हुए तीन क़ैदी जेल के चपरासी के द्वारा बाहर से पत्थर मँगवाते हैं, और घड़ी और कैलेण्डर को निशाना बनाकर उन्हें तोड़-फाड़ डालते हैं। उनकी पूछताछ होती है। कर्मचारी-वर्ग के साथ मारपीट भी होती है, और अन्ततः, तीनों क़ैदियों को मृत्यु-दण्ड सुना दिया जाता है। नाटकीय घटनाओं में न तो मनोवैज्ञानिक गाम्भीर्य का तत्त्व है, और न उस विस्मय का जो घटनाओं को उच्च बिन्दु की ओर बढ़ते हुए दिखाने से पैदा होता है। वस्तुतः इस प्रकार की विषय-वस्तु के लिए जिस करुणापूर्ण वातावरण की, जेल-सम्बन्धी नाटक की

तकनीक और शिल्प की आवश्यकता रहती है — वह बेदी पैदा नहीं कर सके।

'तलछट' नाटक का केन्द्रीय पात्र एक सत्ताईस वर्षीय महिला है जिसका नाम 'माँ' ही रखा गया है। वह एक निर्धन और विधवा नारी है। उसने योग को बड़े कष्ट उठाकर पाला है। योग एक चौदह वर्ष का प्रतिभा-सम्पन्न लड़का है। उसका पिता एक सैनिक था, जिसकी युद्धभूमि से कोई सूचना नहीं आयी। इसी बीच योग की असली माँ की भी मृत्यु हो गयी और इस विधवा नारी ने उसे अपने पुत्र की तरह पाल-पोस कर बड़ा किया। कृष्णा, जो इस विधवा के पड़ोस में रहती है, आकर इसे बताती है कि योग का पिता श्रीपत रात उसके यहाँ आकर ठहरा है। कृष्णा अच्छे चाल-चलन की औरत नहीं और योग की माँ उससे घृणा करती है। श्रीपत लड़ाई में मारा नहीं गया था, वरन् क़ैद हो गया था, तथा युद्ध-समाप्ति के बाद वह स्याम में लौंग और काली मिर्च का बहुत बड़ा व्यापारी बन गया है। उसे स्याम में सूचना मिली थी कि उसकी पत्नी और पुत्र दोनों मर गये हैं और उसने विवश होकर सन्तोष धारण कर लिया था। अपने देश की पुरानी यादें ताज़ा करने वह आया तो कृष्णा के यहाँ ठहरा, क्योंकि उस जैसे मर्द का ठिकाना ऐसी ही औरतों के घर होता है। कृष्णा के द्वारा उसे ज्ञात हुआ कि योग जीवित है। श्रीपत आता है और विधवा को बहुत धन्यवाद देता है, और योग को अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट करता है। योग और उसकी माँ दोनों इन्कार करते हैं। श्रीपत कारोबारी ढंग में समझाता है कि आप भावुकता से काम न लीजिए, एक पिता के रूप में योग पर उसका पूरा अधिकार है। बाक़ी बचे आठ साल तक उसे पालने-पोसने का व्यय तो वह इससे कहीं अधिक दे देगा। माँ यह सुनकर बिफर जाती है। योग को ज़बरदस्ती श्रीपत के हवाले कर देती है और दोनों को बाहर निकाल देती है।

मुज़फ़्फ़र अली सय्यद के कथनानुसार यह नाटक एक रूसी कहानी पर आधारित है। विषय-वस्तु को भारतीय बनाने की शायद कोशिश करने पर भी नाटक विदेशी ही रहता है। विधवा और श्रीपत के बीच झगड़ा नाटकीय बनने के स्थान पर उन्माद का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसे संभवतः कहानी तो सहन कर लेती पर नाटक का इससे निर्वाह नहीं हो सकता।

'एक औरत की न' नाटक में बेदी को उपर्युक्त नाटकों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है। एक ही दृश्य पर आधारित होने के कारण यह नाटक मंच पर भी सफलता-पूर्वक अभिनीत किया जा सकता है। इस नाटक में नाटकीय मुहावरे पर भी बेदी की पकड़ दृढ़ है, और संवाद इतने चुस्त हैं कि 'नक़ल-ए-मकानी' के अतिरिक्त और किसी नाटक में दिखायी नहीं देते। नाटक में घटनाओं का क्रम स्वाभाविक है, और प्रत्येक घटना ऐसी व्यंग्यात्मक स्थिति में बदल जाती है जिससे संवाद में हास्य का पुट दुगना हो जाता है। हृदयनाथ तिवारी और उसकी पत्नी वसन्ती में चाहे मानसिक गहराई न सही, पर वे कठपुतलियाँ भी नहीं कि जिनसे संवाद बलवाकर मनोरंजन की सामग्री एकत्र की गयी हो। दोनों को बेदी ने

कम-से-कम इतना निजी व्यक्तित्व प्रदान किया है कि वे अपने गृहस्थ जीवन में एक ऐसा नाटक खेल सकें जो मात्र कठपुतलियों या सपाट पात्रों द्वारा संभव नहीं।

हृदयनाथ तिवारी एक लेखक है और नाटक लिखता है। उसे मिसेज़ गुप्ता में दिलचस्पी है, पर उसका यथार्थ-चित्रण इतना उग्र है कि वह अपने नाटक में मिसेज़ गुप्ता का ख़ाका खींचने से भी बाज़ नहीं आता। वह कहता है, "मैं मानव को देवता के रूप में नहीं देखता। उसकी सृष्टि में बसी हुई बर्बरता और वहशीपन को देखता हूँ, और नारी को सिर से पाँव तक छल-छद्‌म से भरा हुआ एक अस्तित्व।" उसकी यह उग्रता उसके प्रसन्नचित्त और अनुरागी व्यक्ति बने रहने में बाधक नहीं बनती। वह जानता है कि उसकी पत्नी वसन्ती को भी दूसरे पुरुषों को अपने सौन्दर्य और अपने वस्त्रों से रिझाने में मज़ा आता है — यद्यपि ऐसी बात उससे कही जाए तो वह साफ़ इनकार कर देगी। वसन्ती को डॉ. लाम्बा में भी ऐसी ही दिलचस्पी है जैसी कि तिवारी को मिसेज़ गुप्ता में। ऐसी दिलचस्पियाँ तिवारी की दृष्टि में नितान्त स्वाभाविक और मानवोचित हैं, और इसलिए वह उन्हें सदाचार के मापदण्ड पर नहीं मापता। उसकी दृष्टि में सदाचरण मात्र एक छद्‌मावरण है जिससे पुरुष और नारी अपनी सहज दुर्बलताओं पर परदा डालते हैं। पर तिवारी अपने विचारों को वसन्ती के सामने दो टूक या स्पष्ट रूप में प्रकट नहीं करता कि ऐसा करने से संभव है वसन्ती को धक्का लगे। चुनाँचे, संकेतों और आँख के इशारों में ऐसी बातें कही जाती हैं जो अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए भी इसे गुप्त रखती हैं।

वसन्ती इन संकेतों को न समझने का ढोंग करती है, पर प्रायः समझ लेती है। वह झुंझलाती हे कि उसका नितान्त वह अभिप्राय नहीं था जो तिवारी समझ रहा है, यद्यपि जानती है कि मन की गहराइयों में तो अभिप्राय वही था जो तिवारी ने समझा है — यह अलग बात है कि इसे स्पष्टतः प्रकट करने से स्वयं वसन्ती झिझकती है। पूरे नाटक की मनोरंजकता का रहस्य संवादों की इसी ढकी-छुपी स्थिति में छुपा हुआ है। बेदी ने परिस्थिति को 'फ़्लर्टेशन' (दिखावटी प्रेम-प्रदर्शन) के स्तर पर ही रखा है, और इस तरह सदाचरण को नाक-भौं चढ़ाने का अवसर नहीं दिया। उदाहरणार्थ, तिवारी अपने मित्र मदन को कहता है, "वसन्ती तुम्हारे चुटकले बहुत पसन्द करती है, तुम्हारी प्रशंसा करती है और कहती है जो नारी इस व्यक्ति से जुड़ेगी वह बहुत सुखी रहेगी।" या उसका यह कहना कि औरतों को अपनी नयी साड़ी दिखाने का या नयी सैण्डल की नुमाइश का बहुत शौक़ होता है। और, वसन्ती नयी साड़ी पहन कर दाख़िल होती है। ये अनावश्यक बातें हैं और बेदी ने ऐसी ही बातों के ताने-बाने से नाटक में 'फ़्लर्टेशन' की डिज़ाइन तैयार की है। इशारों का यह अनावश्यक कामुक प्रदर्शन सदाचरण के स्तर पर असह्य प्रतीत नहीं होता।

तिवारी बहाना करता है कि उसे एक नया नाटक लिखना है। इसलिए कोई भी आए तो कह दिया जाए कि वह घर पर नहीं है। वस्तुतः, डॉ. लाम्बा आने वाले हैं और तिवारी वसन्ती से कहता है कि वह डॉ. लाम्बा के साथ सिनेमा हो आए। वसन्ती पहले तो झूटमूट

का इन्कार करती है, लेकिन फिर तैयार होने चली जाती है। दरवाज़े पर दस्तक होती है। वसन्ती समझती है डॉ. लाम्बा आ गये, और वह अभी मैले कपड़े ही पहने हुए है। उसकी घबराहट देखने योग्य है। इधर-उधर दौड़-भाग में उसके पैर में मोच भी आ जाती है। अन्ततः, जब वह बनी-ठनी दरवाज़ा खोलती है तो मिसेज़ गुप्ता दाख़िल होती है। वसन्ती के अरमानों पर जैसे ओस पड़ जाती है। मिसेज़ गुप्ता वसन्ती को बाज़ार चलने को आमन्त्रित करती है। तिवारी तो मिसेज़ गुप्ता के साथ जाने के लिए तैयार ही बैठा होता है। वसन्ती कहती है वह नहीं जा सकती क्योंकि उसके पाँव में मोच आ गयी है। तिवारी कहता है, "क्या हुआ, रास्ते में डॉ. लाम्बा को भी साथ ले लेंगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि बेदी का हर नाटक एक नया विषय लेकर आया है। उनके यहाँ विषय-वस्तु में परस्पर साम्य नहीं है। इतना ही नहीं, रेडियो नाटकों की सीमा में रहकर भी उन्होंने तकनीक के अछूते प्रयोग किये हैं। 'रख़्शिन्दह्' उनका एक ऐसा ही नाटक है। 'रख़्शिन्दह्' की कला का अस्तित्व उसके रूमानी वातावरण, लयबद्ध शैली और रहस्यात्मक अर्थवत्ता के कारण है। नाटक के रूमानी वातावरण को प्रस्तुत करने में बेदी ने अलौकिक भीति का तत्त्व सम्मिलित किया है, जो कि नाटक की रहस्यमय विषय-वस्तु से पैदा होता है।

"स्थान पुराने ढंग के ठाठदार मकान का बाहरी भाग, समय रात का। ज़ोरदार बारिश हो रही है, और बिजली कड़क रही है। रख़्शिन्दह् 22-23 वर्ष की एक पढ़ी-लिखी स्नायु-रोग-ग्रस्त लड़की है। वह वर्षा में भीगती हुई अपनी बहिन के कमरे के दरवाज़े पर जाती है। वह परेशान है क्योंकि उसका पति अभी तक बाहर से नहीं आया। बेदी पति की प्रतीक्षा को धीरे-धीरे 'सृष्टि की उत्पत्ति के अवसर पर आत्मा की जुदाई' के रूप में ढालकर कहानी को रहस्यवादी कहानी में परिवर्तित कर देते हैं। जुदाई का यह दर्दनाक क्षण वास्तविक सत्ता की खोज, अनुधावन, और मिलनेच्छा का क्षण भी है। जिस तरह सृष्टि के आरम्भ से चन्द्रमा सूर्य का अनुधावन कर रहा है, पर सदा से बराबर के अन्तर पर स्थिर रहा है, उसी तरह आत्मा सृष्टि के आरम्भ से अपने प्रियतम को पकड़ने के लिए परेशानी की हालत में इस संसार में घूमती-फिरती है, लेकिन उसे पकड़ नहीं पाती।"

रख़्शिन्दह् की स्नायु-रोग-ग्रस्तता उन्माद का रूप ग्रहण कर लेती है, और उन्माद 'रहस्योद्घाटन करने की अवस्था' में पहुँच जाता है। भाभी रख़्शिन्दह् की रहस्योद्घाटन-क्षमता को पहचान लेती है — "आपा ! मुझे माफ़ कर दो। मैं नहीं जानती थी कि तू आकारधारी आत्मा है, आत्मा।"

रख़्शिन्दह् की दशा दयनीय हो जाती है। घर के सब लोग परेशान हैं। उस समय उसका पति बेहोशी की हालत में प्रवेश करता है। रख़्शिन्दह् फूट पड़ती है, "कहाँ थे आप ?"

"मैं यहीं था, क्यों क्या हुआ ? क्या बात है ? तुम सब लोग परेशान क्यों दिखायी देते हो ?"

रख़्शिन्दह् कहती है, "आप यहाँ नहीं थे, आप यहाँ नहीं थे।"

"मैं तुमसे एक हाथ की दूरी पर था। ओ अशान्त आत्मा ! मैं सदा एक हाथ की दूरी पर रहता हूँ। पर तुम मुझे पाने के लिए अपना हाथ नहीं फैलाती।"

रख़्शिन्दह् आत्मा भी है और देह भी। पर आत्मा देह की क़ैद से इतनी सीमा तक स्वतन्त्र हो जाती है कि नाटक की यथार्थवादी संरचना आत्मा की उड़ान को नियन्त्रण में नहीं रख सकती। होना तो यह चाहिए था कि पति की प्रतीक्षा की स्थिति यथार्थवादी स्तर पर ही प्रस्तुत की जाती। पर विरह और प्रतीक्षा के क्षणों में इतनी उग्रता पैदा की जाती है कि उसमें सृष्टि के आरम्भ में आत्मा की जुदाई का दृश्य दिखायी देने लगता है। परिणामतः नाटक में अध्यात्मवाद मनोविश्लेषण को दबोच करके अपनी आभा दिखाता नज़र आता है। पति की प्रतीक्षा में अधीर रख़्शिन्दह् का 'रहस्योद्घाटन-क्षमता' की स्थिति में प्रवेश करना नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत है। बेदी को चाहिए था कि वह रख़्शिन्दह् की बेचैनी को यथार्थवाद और मनोविश्लेषण के स्तर पर ही रखते, केवल उसी स्थिति में वह आत्मा की जुदाई और बेचैनी का प्रतीक बन सकती थी। बेदी प्रतीकात्मकता के परदे को बार-बार फाड़कर ऐसे संकेत देते दिखायी देते हैं कि जिससे रख़्शिन्दह् आत्मा का प्रतीक नहीं, बल्कि आकारधारी आत्मा दिखायी देने लगती है। और यह विरह-सन्तप्त आत्मा रहस्योद्घाटन-क्षमता के जिन अनुभवों में से गुज़रती है उन्हें नाटक का वह कैन्वास सम्भाल नहीं पाता जो पति की प्रतीक्षा में बेचैन पत्नी के चित्रण के लिए तराशा गया है। बेदी की असफलता का कारण है कि वह प्रतीकात्मक शैली का पूरी कलापूर्ण सावधानी के साथ प्रयोग करने में अक्षम रहे हैं।

'चाणक्य' और 'ख़्वाजा सरा' दोनों नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखे गये नाटक हैं। 'चाणक्य' में बेदी की 'हिन्दी-शैली' अपनी बहार पर है, और 'ख़्वाजा सरा' में फ़ारसी-मिश्रित उर्दू का अपना मज़ा है। 'चाणक्य' में चन्द्रगुप्त के दरबार का ठाठ-बाट है तो 'ख़्वाजा सरा' में पतनोन्मुख मुग़लिया रियासत का चित्रण है।

चाणक्य चन्द्रगुप्त का महामन्त्री है। अपनी कूटनीति, शुभाकांक्षा और अवसराभिज्ञता से काम लेकर उसने चन्द्रगुप्त को एक विशाल राज्य के सिंहासन पर बिठाया है। चाणक्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हर उचित अनुचित साधन का प्रयोग करता है। चन्द्रगुप्त की रानी दुर्धरा उसकी दुरभिसन्धियों और षड्यन्त्रों से अत्यधिक घृणा करती है। वह कहती है :

> "जिस तरह विषकन्या के शरीर में विष धीरे-धीरे बस जाता है उस तरह क्रोध और बदले की आग उसकी नस-नस में सुलग रही है। वह तक्षक नाग की तरह काला भुजंग है। विष-कन्या के समान वह जिसे भी छुएगा, जला डालेगा।"

चन्द्रगुप्त [illegible] की चालों को समझता है, लेकिन कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि चन्द्रगुप्त की डोर भी चाणक्य के हाथ में है। चाणक्य ने ही उसे एक बड़े राज्य का सम्राट बनाया

है। जो घृणास्पद कार्य सम्राट नहीं कर सकता, उसका महामन्त्री कर सकता है। वह बड़ी निर्दयता से उन लोगों का वध कर सकता है जो उसकी आकांक्षा की राह में आते हैं, और चाणक्य की आकांक्षा है एक बड़ा राज्य स्थापित करना। चन्द्रगुप्त की रानी दुर्धरा चन्द्रगुप्त से कहती है :

> "चाणक्य ने मनुष्य की सर्वोच्च अवस्था से गिराकर आपको मात्र एक सम्राट बना दिया। इस कुटिल, कठोर ब्राह्मण का अर्थशास्त्र सम्पूर्ण घृणा और संदेह से भरा हुआ है, प्रेम से नहीं। अपराधी को क्षमा कर देने में जो आनन्द है, उसकी प्राप्ति उसने कभी नहीं की। प्रेम के परम आनन्द का उसे कोई अनुभव नहीं।"

चाणक्य की चालों का सीधा निशाना राजा पर्वतक है, जिसने सम्राट चन्द्रगुप्त के राज्य को सुदृढ़ बनाने में अपना खून-पसीना एक कर दिया था। चन्द्रगुप्त भी पर्वतक को बहुत प्रिय है, अपने शरीर का एक अंग ही समझता है। इसलिए जब चाणक्य उसके वध की बात करता है तो चन्द्रगुप्त काँप जाता है। चाणक्य समझता है कि पर्वतक की शक्ति और लोकप्रियता चन्द्रगुप्त के लिए घातक बन रही है। पर्वतक को रास्ता से हटाना पड़ेगा। चन्द्रगुप्त शोक और क्रोध से चीख़ उठता है, "क्या तुम चाहते हो कि मैं इस मनुष्य के रक्त से अपने हाथ रँगूं, जिसके कारण में इस सिंहासन पर विराजमान हूँ।"

चाणक्य उत्तर देता है :

> "जो हाथ आप के सिर पर ताज रख सकते हैं, वे उतार भी सकते हैं। यदि महाराज पर्वतक ऐसा करने से चूक भी गये तो उनसे बढ़कर मूर्ख कोई न होगा। इस पाप और पुण्य का फल मुझे लेने दीजिए, मुझे — जो इस पाप और पुण्य से ऊपर है।"

पर्वतक अनुराधा से प्रेम करता है, जो चन्द्रगुप्त की भी आँखों में समायी हुई है। चाणक्य ने अनुराधा को उसके जाने बिना एक विषकन्या की भाँति परवान चढ़ाया है। चाणक्य की साज़िश यह है कि पर्वतक की इच्छा-पूर्ति ही में उसके जीवन की समाप्ति भी होगी। पर्वतक को मरना होगा और साथ ही अनुराधा को भी।

पर्वतक यह बात जानता है। वह लग्न-मण्डप में अनुराधा से कहता है :

> "आओ, इन राजपाट के लोभियों को बता दें कि प्रेम पर जीवन निछावर करना प्रेमी एक तुच्छ वस्तु समझते हैं। आओ, मुझे अपना हाथ दो।"

वे एक दूसरे के गले लग जाते हैं और आग के सामने बैठे होने के कारण विष पर्वतक के शरीर में प्रवेश कर जाता है। दो प्रेमी ! दीवाने ! चाणक्य हँसता है।

बेदी चाणक्य को 'शेक्सपीयरिन' खलनायक का रूप तो देते हैं, लेकिन पर्वतक और अनुराधा के प्रणय-सम्बन्ध को 'चाणक्य-नीति' का प्रत्युत्तर बनाने में असमर्थ रहते हैं, क्योंकि चाणक्य पर उनका ध्यान इतना अधिक केन्द्रित है कि इन दो प्रेमियों के चरित्र को विकसित करने के लिए उनके पास समय नहीं बचता।

इसके विपरीत 'ख़्वाजा सरा' में वह मिरज़ा कोचक की कलह-प्रियता को एक खलनायक के रूप में नहीं ढाल सकते। मिरज़ा कोचक को महल की दासी काश्फ़ा से प्रेम है, और क़बाद को भी उससे प्रेम है। क़बाद सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और वीर व्यक्ति है, पर एक साधारण और निर्धन आदमी है। आमने-सामने की लड़ाई में मिरज़ा कोचक क़बाद का मुकाबला नहीं कर सकता। अतः वह साज़िश करके क़बाद को उसके पुंसत्व से वंचित करा देता है और उसे महल में 'ख़्वाजा सरा' के रूप में भेज देता है। क़बाद इस साज़िश का शिकार जान-बूझकर बनता है, क्योंकि वह जानता है कि महल में अपनी प्रेमिका काश्फ़ा का सामीप्य प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि वह ख़्वाजा सरा बन जाए। नाटक आरम्भ होते ही वह हमारे सम्मुख प्रेमी के रूप में नहीं, वरन् ख़्वाजा सरा के रूप में आता है। इससे तो अच्छा यह था कि मिरज़ा कोचक उसे ज़बरदस्ती ख़्वाजा सरा बनाता, ताकि उसके कलहप्रिय व्यक्तित्व में अत्याचार और बर्बरता का पक्ष हमारे सम्मुख कहीं अधिक उभर कर आता। ख़्वाजा सरा के रूप में क़बाद में न तो शोक-भाव उभर कर आता है, न ही प्रणय-भाव। मिरज़ा कोचक जब क़बाद को मारने दौड़ता है तो काश्फ़ा सहज मानवीय सहानुभूतिवश उसकी जान बचाती है वरना उसे क़बाद से घृणा हो गयी है। अन्ततः काश्फ़ा न मिरज़ा कोचक के हाथ आती है और न क़बाद के। वह सरदार क़ोमीश के साथ भाग जाती है। जब क़बाद से कहा जाता है कि वह दूसरे लोगों की भाँति काश्फ़ा का पीछा करने क्यों नहीं जाता तो वह बिल्कुल ख़्वाजा सरायाना ढंग में कहता है : "आए हाय बेगम ! क़ुरबान जाऊँ — इत्ती-सी बात के पीछे अब मर थोड़े ही जाए है आदमी — जीना तो सबसे पहला काम होवे है !"

'नक़ल-ए-मकानी' बेदी का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। यह इतने कलात्मक रूप में लिखा गया है कि इसे बिना झिझक के उर्दू के कुछ उत्कृष्ट नाटकों में सम्मिलित किया जा सकता है। बेदी ने अपनी फ़िल्म 'दस्तक' इसी नाटक पर बनायी थी। यह नाटक एक ऐसे जोड़े की कहानी है जो मकान की तलाश में परेशान रहा है और अन्ततः उसे एक ऐसा मकान मिलता है जिसमें पहले एक वेश्या शादो रहा करती थी। नफ़ीस और अज़रा पर यह बात धीरे-धीरे खुलती है। नफ़ीस के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह एक मामूली आदमी है जो नहर-विभाग में नौकरी करता है। अज़रा उसकी खूबसूरत बीबी है जो गाने-बजाने की भी शौकीन है। नये मकान में सामान रखते और मकान का निरीक्षण करते समय पति-पत्नी जो बातें करते हैं, उससे मकान के कुछ 'बे-क़ायदा' होने का संदेह दृढ़ होता जाता है। पर वे अपने दिल को समझाते हैं और उसमें रहना शुरू करते हैं। नाटक में एक आवश्यक और मनोरंजक भूमिका पनवाड़ी की है जिससे पूछताछ करने के बाद पति-पत्नी पर यह भेद खुलता है कि इस मकान में मशहूर वेश्या शमशाद बाई उर्फ़ 'शादो' रहा करती थी। यह सुनकर पति-पत्नी दोनों के पाँव तले से ज़मीन खिसक जाती है। पर अब क्या किया जाए ? मकान इतनी आसानी से थोड़े मिलता है। जब तक

दूसरी व्यवस्था न हो, यहीं रहना पड़ेगा। इस बातचीत के बीच दरवाज़े पर दस्तक होती है और सय्याँ दाख़िल होता है जो शादो का पुराना ग्राहक था। सय्याँ का असली नाम अमजद हुसैन है और वह एक बे-परवा छात्र है। जब सिर पर परीक्षा का बोझ होता है और घर से पैसे आते हैं तो वह शादो के यहाँ गीत-संगीत से जी बहलाने आ जाता है। आज भी वह पिए हुए है। अज़रा दूसरे कमरे में चली जाती है, और नफ़ीस के समझाने के बावजूद कि अब यहाँ शादो नहीं रहती वह अज़रा के कमरे की ओर लपकता है। अन्त में पनवाड़ी आता है और सय्याँ को धक्के देकर बाहर निकालता है।

इस प्रकार की घटनाएँ तो होती रहती हैं, लेकिन मुसीबत तब आती है कि मुहल्ले के सम्मान्य-गण मीटिंग करके निर्णय करते हैं कि इस जोड़े को यहाँ से चले जाने की सलाह दी जाए। नफ़ीस अज़रा से कहता है कि मुहल्ले वाले समझते हैं कि पति पत्नी से पेशा कराता है। अज़रा बहुत परेशान होती है। कुछ समझ नहीं आता, क्या करे। इसी बीच मिरज़ा शौकत और बनवारी की बातचीत सुनायी देती है जो अन्दर आने के बहाने ढूँढ़ते हैं। जब वे अन्दर आते हैं तो नफ़ीस उन्हें डाँट कर निकाल देता है। मिरज़ा शौकत धमकी देता है कि कल हम मुहल्ले के इमाम साहब को लेकर आएँगे। आपने बहू-बेटियों वाले मुहल्ले में यह अड्डा बना रखा है। आप जैसा हर आदमी यूँ अपने आप को गृहस्थ ही बताता है। मामला बढ़ जाता है तो पुलिस इन्सपेक्टर और कान्स्टेबल दाख़िल होते हैं। इन्सपेक्टर मिरज़ा शौकत और बनवारी को बाहर निकाल देता है ताकि दूसरे मुहल्लादारों के साथ उनकी भी गवाहियाँ पेश की जाएँ। फिर वह अज़रा और नफ़ीस से सहानुभूति प्रकट करता है। नेकचलनी की ज़मानत के लिए थाने बुलाता है। चाय की दावत भी देता है। पर अज़रा और नफ़ीस को, स्वाभाविक था कि, उसकी नीयत में भी ख़राबी नज़र आती है।

इधर नफ़ीस की भाँजी का विवाह निकट आ रहा है। कुछ-न-कुछ देना-दिलाना पड़ेगा। "मैं कहती हूँ, तुम भी भला दफ़्तर के दूसरे लोगों की तरह क्यों नहीं हो जाते। इस वेतन में गुज़ारा होने से रहा। कभी-कभार पैसे ले लेने से क्या हो जाता है? यह ग़रीबी भी तो सौ गुनाहों का गुनाह है।" तात्पर्य यह कि अज़रा और नफ़ीस दोनों में आत्मबल क्षीण पड़ता जा रहा है और बुराई का तत्त्व धीरे-धीरे उनमें घर करता जा रहा है। अज़रा कहती है, "नफ़ीस, तुम जीवन भर इतने शरीफ़ रहे, मुझे बताओ, तुम्हें इससे क्या मिला है? यहाँ मुहल्ले में जो हमारी बदनामी हुई है और अब तक रुसवाई होती है इसके लिए हमारी शराफ़त ही तो ज़िम्मेवार है। अभी कल ही इमामबाड़े की औरत से मेरी लड़ाई हुई। उसने जो कुछ कहा — इलाही पनाह, अल्लाह दे और बन्दा ले, पर अब तो यह बातें दिल पर असर ही नहीं करतीं, (पान लगाते हुए) यहाँ आकर हमें भी पान खाने की आदत हो गयी।

अभिप्राय यह कि वातावरण का प्रभाव, दिन-प्रतिदिन के असहनीय अनुभवों से ढिठाई का पैदा हो जाना, निर्धनता, शराफ़त के दिखावे की निरर्थकता, रिश्वत लेने की सलाह —

ये सब तत्त्व सच्चरित्रपूर्ण व्यक्तित्व के ह्रास में अपना योग प्रदान करते हैं। इसी बीच दरवाज़े पर दस्तक होती है। नफ़ीस जाकर दरवाज़े पर देखता है। एक अय्याश रईस शिवव्रत शादो का गाना सुनने कई वर्षों के बाद इस नगर में आया है। अज़रा नफ़ीस से कहती है — "तुमने तो इसे बता दिया होता कि अब शादो यहाँ नहीं रहती।" नफ़ीस अपराधी व्यक्ति के ढंग में कहता है, "इधर ले आऊँ ? सेठ है, कोई चोर तो नहीं है। मैं कहता हूँ — एक गाना सुना दो। सेठ केवल गाना सुनने का शौक़ीन है। सौ-एक रुपया हो जाएगा। गाना सुनाने में क्या हर्ज है ?

सेठ आकर बैठता है। अज़रा बड़ी कोशिश से तंबूरा छेड़ती है। दरवाज़े पर पनवाड़ी दिखायी देता है और फीकी-फीकी मुस्कराहट के साथ कहता है, "कै पान दरकार होंगे सरकार को ?"

(परदा गिरता है)

❐